॥ ओ३म् ॥

व्यवहारभानु–प्रश्नोत्तरी

लेखिका
कु.कञ्चन आर्या
(एम.ए., एम.एड.)

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

प्रकाशक : विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली-110006, भारत
दूरभाष : 23977216, 65360255
E-mail : ajayarya16@gmail.com
Website : www.vedicbooks.com

वैदिक-ज्ञान-प्रकाश का गरिमापूर्ण 90वाँ वर्ष (1925-2015)

संस्करण : 2015
मूल्य : रुपये
मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली।

Vyavaharbhanu—Prashnottari *by* Km. Kanchan Arya

॥ ओ३म् ॥

समर्पण

जगद्गुरु महर्षि दयानन्द द्वारा रचित
'व्यवहारभानु' ग्रन्थ पर आधारित यह

व्यवहारभानु-प्रश्नोत्तरी

सरल एवं सत्य व्यवहार की मूर्ति
मेरे अध्यात्म गुरु
स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती जी
के चरणों में सादर समर्पित है।

कञ्चन आर्या

कहाँ क्या पढ़ें?

विषय	पृष्ठ संख्या
समर्पण	
द्वे वचसी	
प्राक्कथन	
सम्मति	
आशीर्वचन	
निवेदन	
व्यवहारभानुः भूमिका (प्रश्नोत्तर)	
पुस्तक की विषय-वस्तु (प्रश्नोत्तर)	
अच्छी शिक्षा	
पण्डित (अध्यापक) के लक्षण	
मूर्ख के लक्षण	
दृष्टान्तः शेखचिल्ली और बनिया	
विद्यार्थियों के दोष	
विद्या और सुख	
ब्रह्मचर्य और विद्याप्राप्ति	
शूरवीर	
शिक्षा और विद्या	
माता-पिता और आचार्य	
विद्या-प्राप्ति के उपाय	
आचार्य और विद्यार्थी	
विद्या का महत्त्व	
दृष्टान्तः हुड़दंगा और सज्जन	
आचार्य एवं उसका आचरण	
विद्यार्थी का आचरण	
सत्य-असत्य निर्णय	
धर्म और अधर्म (सत्य और असत्य)	
सभा में व्यवहार	
जड़बुद्धि और तीव्रबुद्धि	
दृष्टान्तः महाजड़ और विद्वान्	
माता-पिता और सन्तान	
परस्पर व्यवहार	

thearyasamaj.org

ब्रह्मचर्य की आयु
कन्याओं की शिक्षा
विद्या-प्राप्ति का क्रम
धर्मात्मा और अधर्मी
विद्या और अविद्या
न्याय और अन्याय
धर्म और अधर्म
दृष्टान्तः महामूर्ख का
विद्या पढ़ाने के लाभ
विद्या-विरोधी स्वार्थी
पोप का अर्थ
विद्या और धर्म
सत् और असत् पुरुष
पुरुषार्थ और व्यय
विवाह एवं पति-पत्नी का व्यवहार
मनुष्यता और सत्य व्यवहार
दृष्टान्तः लाल बुझक्कड़
सत्य और धर्म
चार दृष्टान्तः ग्राहक और दुकानदार
धार्मिक बनने का आधार
दृष्टान्तः विद्वान् और दो विद्यार्थी
विद्वान् और धार्मिक
दृष्टान्तः अविद्वान् रामा और भिक्षुक ब्राह्मण
राजा और प्रजा
दृष्टान्तः अन्धेर नगरी गवर्गण्ड राजा
राजा और प्रजा का भाग्य
विद्या और धार्मिक व्यवहार
परिशिष्ट-I
परिभाषाएँ
परिशिष्ट-II
लघु प्रश्नोत्तरों की सूची
परिशिष्ट-III
अतिलघु प्रश्नोत्तरों की सूची

aryasamaj.org

द्वे वचसी

बहिन कञ्चन जी द्वारा लिखित पुस्तक **'व्यवहारभानु-प्रश्नोत्तरी'** को मैंने रुचि से देखा है। पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। पुस्तक की सम्पूर्ण विषय-वस्तु को प्रश्नोत्तरों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मूल ग्रन्थ में अनेक ऐसे स्थल हैं, जहाँ पर सामान्य पाठक महर्षि द्वारा प्रस्तुत बिन्दुओं को हृदयंगम नहीं कर पाता। ऐसे स्थलों पर लेखिका ने प्रश्न उठाकर उन बिन्दुओं को विशेष रूप से स्पष्ट करने का प्रयास किया है, जो अत्यन्त उपयोगी है। इसी प्रकार, कुछ स्थल ऐसे हैं, जहाँ पर कुछ बिन्दु मुख्य पाठ्य विषय के साथ सीधे सम्बद्ध प्रतीत नहीं होते। ऐसे बिन्दुओं को भी प्रश्नोत्तरों की सहायता से स्पष्ट कर दिया गया है। इससे महर्षि का अभिप्राय पाठक के समक्ष स्वयं उपस्थित हो जाता है। इसी कारण इन प्रश्नोत्तरों को पढ़ते हुए **व्यवहारभानु** को सूक्ष्मता एवं एकाग्रता से पढ़ने की प्रवृत्ति होती है।

इस पुस्तक की अन्य उपयोगिता यह है कि लेखिका ने मूल पुस्तक की सम्पूर्ण सामग्री को विभिन्न विषयों के अनुसार **शीर्षकबद्ध** कर दिया है। इससे पाठक विषय-वस्तु के तात्पर्य को भली-भाँति समझ लेता है। अन्त में दिये गये तीनों परिशिष्टों ने पुस्तक की उपयोगिता को और अधिक बढ़ा दिया है। **परिशिष्ट-I** में ऋषि के अपने ही शब्दों में प्रस्तुत की गई परिभाषाएँ जहाँ मूल ग्रन्थ की मौलिकता को बनाने में सहायक हैं, वहीं पाठक को यह सुविधा भी है कि

वह एक ही स्थान पर एक शब्द-विषयक वे सभी परिभाषाएँ पढ़ सकता है, जो महर्षि ने मूल पुस्तक में अलग-अलग स्थानों पर दी हैं। इससे पाठक ऋषि के समग्र दृष्टिकोण को सरलतापूर्वक जानकर हृदयंगम कर सकता है।

संक्षेप में, इस प्रश्नोत्तरी से केवल बच्चों को ही नहीं, अपितु शिक्षकों को भी लाभ होगा। वे सूक्ष्मता से बच्चों को समझा सकेंगे। पुस्तक सबके लिए पठनीय एवं संग्रहणीय है। महर्षि दयानन्द के **'व्यवहारभानु'** ग्रन्थ पर इस प्रकार की उपयोगी पुस्तक तैयार करने के लिए बहिन कञ्चन जी को हार्दिक धन्यवाद एवं बधाई है।

-मंगलाभिलाषी-

आचार्य आनन्द प्रकाश

आर्ष-शोध-संस्थान

अलियाबाद, मं. शामीरपेट

जि. रंगारेड्डि-500078 (आं.प्र)

thearyasamaj.org

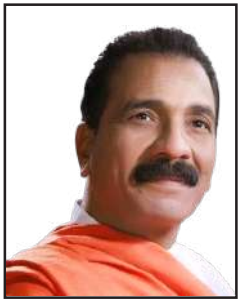

प्राक्कथन

19वीं शताब्दी में, जिस समय भारत में चहुँ ओर अज्ञान, अंधविश्वास और पाखण्ड के घोर अंधकार में धर्म का वास्तविक स्वरूप धूमिल हो चुका था, ईश्वर के स्वरूप का किसी को भी शुद्ध और निश्चयात्मक ज्ञान शेष नहीं रह गया था, जाति-पाँति एवं ऊँच-नीच के कारण एक मानव दूसरे मानव के भी प्रति घृणास्पद व्यवहार कर रहा था, ऐसे विषम परिस्थिति में ईश्वर की कृपा से गुजरात के टंकारा प्रान्त में एक महान् आत्मा का अवतरण हुआ। आस्तिक किन्तु अंधविश्वासयुक्त पौराणिक परिवार में जन्म लेने वाले इस मूलशंकर नामक बालक को बचपन से ही तर्क एवं युक्तिविहीन बातें कदापि स्वीकार्य नहीं थीं। परिणामतः सब प्रकार की सुख-सुविधाओं और सांसारिक प्रलोभनों को ठोकर मारकर इस होनहार बालक ने महर्षि दयानन्द सरस्वती के रूप में पूर्णरूपेण वेदानुकूल और संशयरहित सत्य की खोज करके दम लिया। और समस्त संसार के समक्ष घोषणा कर दी कि **'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।'** और स्वयं सत्य

की स्थापना के लिए प्राणपण से जुट गये। इतिहास साक्षी है कि नौ वर्षों की अल्पावधि में घोर विरोधों के बावजूद इस महामानव ने जहाँ समूचे देश में व्याख्यानों, शास्त्रार्थों आदि के द्वारा सत्य ज्ञान की ज्योति जलाई, वहीं सत्य की चिर स्थापना के लिए अपनी कलम द्वारा ऐसे अद्वितीय ग्रन्थ रच डाले जिनका कोई भी सानी न था। निष्पक्ष, तर्कसम्मत एवं ऋषियों की मान्यताओं के अनुकूल तथ्य और सिद्धान्तों पर आधारित इन ग्रन्थों में प्रत्येक पर अनुसंधान अपेक्षित है। इन सभी ग्रन्थों की चर्चा यहाँ सम्भव नहीं है। (इस पुस्तक की लेखिका बहिन कञ्चन द्वारा पूर्वलिखित **'महर्षि दयानन्द ग्रन्थ-परिचय'** नामक रचना में इन सभी ग्रन्थों का परिचय प्राप्त किया जा सकता है।)

प्रस्तुत प्रसंग में मैं केवल महर्षि की **'व्यवहारभानु'** नामक रचना का उल्लेख करना चाहता हूँ, जिसमें उल्लिखित व्यवहार का आचरण कर मानव सूर्य की भान्ति प्रकाशमान हो सकता है। तदनुसार, व्यवहार में अकुशल बहुत बड़ा विद्वान् भी जीवन में उतना सफल नहीं हो सकता, जितना साधारण पढ़ा-लिखा, किन्तु व्यवहार में कुशल व्यक्ति। इस पुस्तक में महर्षि ने विभिन्न स्तरों के मनुष्यों के लिए विभिन्न देश, काल और परिस्थितियों में उचित व्यवहार का उल्लेख किया है और अनुचित व्यवहार का निराकरण किया है। अनेक दृष्टान्तों और उदाहरणों द्वारा उन्होंने अपने मत की पुष्टि भी की है।

बहिन कञ्चन जी ने इन सब मन्तव्यों को **'व्यवहारभानु-प्रश्नोत्तरी'** नामक इस पुस्तक में प्रश्न-उत्तरों एवं सरल भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जो अत्यन्त सराहनीय है। लेखिका द्वारा किया गया यह

प्रयास जनसाधारण के जीवन में उत्तम व्यवहारों द्वारा संसार में सुख और प्रेम का वातावरण बनाने का मार्ग प्रशस्त करेगा। मुझे आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि जो भी इस पुस्तक को पढ़ेगा, वह अपने जीवन-निर्माण के साथ-साथ अन्यों को भी यह पुस्तक पढ़ने की प्रेरणा दिये बिना न रह सकेगा। जो लोग प्राणी मात्र को प्रसन्न और सुखी देखना चाहते हैं, वे अवश्य ही इस पुस्तक को अधिक से अधिक संख्या में युवाओं और जनसाधारण के बीच में पहुँचाने का पुण्य कार्य करेंगे। मेरी ओर से इस पुस्तक की लेखिका बहिन कञ्चन एवं समस्त पाठकों को हार्दिक शुभ कामनायें।

14/06/2011

-आचार्य ब्र, राजसिंह आर्य

-प्रधान, आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली।

thearyasamaj.org

सम्मति

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने **'व्यवहारभानु'** नामक एक छोटा किन्तु अत्युपयोगी ग्रन्थ लिखा है। इस ग्रन्थ में उन्होंने विद्या एवं व्यवहार-सम्बन्धी विभिन्न पहलुओं का वर्णन किया है। इसी ग्रन्थ को आधार बनाकर बहिन कञ्चन जी ने **'व्यवहारभानु-प्रश्नोत्तरी'** नामक प्रस्तुत पुस्तक की रचना की है। मूल पुस्तक में उल्लिखित प्रत्येक विषय और बिन्दु को उन्होंने इस पुस्तक में प्रश्न-उत्तरों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। मैंने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को पढ़ा है। पुस्तक बहुत उपयोगी और रुचिकर है।

मूल ग्रन्थ में प्रयुक्त विषय-वस्तु को प्रस्तुत पुस्तक में आधुनिक और स्पष्ट शैली में परिवर्तित कर दिया गया है। इससे नई पीढ़ी के बच्चों और युवाओं के लिए पुस्तक में वर्णित प्रत्येक बिन्दु ग्राह्य और समझने योग्य बन गया है। महर्षि द्वारा लिखित दृष्टान्तों को भी लेखिका द्वारा प्रश्न-उत्तरों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इससे रोचकता के साथ-साथ प्रत्येक दृष्टान्त के मर्म को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

मेरी दृष्टि में यह पुस्तक किशोरों और युवाओं के लिए विशेष रूप से पठनीय, शिक्षाप्रद एवं प्रेरणास्पद है। ऋषि के ग्रन्थों के प्रचार और प्रसार के लिए यह कार्य अत्यन्त सराहनीय है। इस कार्य के लिए कञ्चन बहिन जी बधाई की पात्र हैं।

शुभ कामनाओं सहित!

9 जून 2011 आचार्य हरिप्रसाद

॥ ओ३म् ॥

आशीर्वचन

कुमारी कञ्चन एक अच्छी लेखिका हैं। इनकी लेखन शैली सरल तथा विषय को सुस्पष्ट रूप से दर्शाने वाली है। यह शैली विषय का खुलासा करके उसे सरल व सहज बना देती है, जिसे कम पढ़े-लिखे जन तथा बच्चे भी समझने में समर्थ होते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में लेखिका ने महर्षि दयानन्द की पुस्तक **'व्यवहारभानु'** का खुलासा किया है। यद्यपि श्री स्वामी जी महाराज ने स्पष्ट ही लिखा है, तथापि कम पठित लोग तथा बच्चे कहीं-कहीं नहीं समझ पाते हैं। लेखिका ने विषय को छोटे-छोटे टुकड़ों में विभाजित करके बड़ी युक्ति से समझाने का प्रयास किया है।

मैं समझता हूँ कि सभी पाठकों को इस पुस्तक को पढ़कर लाभ होगा। जो कोई भी पढ़कर इसके अनुसार आचरण करेगा, उसकी अवश्य प्रगति होगी, उसका जीवन उन्नत होगा तथा वह सही अर्थों में आर्य बनेगा।

पुत्री कञ्चन मात्र एक अच्छी लेखिका ही नहीं, अपितु एक अच्छी साधिका भी हैं। परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि इस पुत्री को और अधिक योग्यता प्रदान करें ताकि ये अपने लेखन कार्य से अन्यों की सेवा करती रहें तथा साधना के उच्च शिखर को प्राप्त करके प्रभुदेव के परम पद मोक्ष को प्राप्त हो सकें।

साधना आश्रम,
दून वाटिका,
धौलास, देहरादून

चित्तेश्वरानन्द सरस्वती
14/06/2011

XIII

निवेदन

एक बार मैं बस पर जा रही थी। मेरे हाथ में बड़ा-सा बैग था। एक सीट पर एक अधेड़ उम्र के सज्जन बैठे थे। मुझे देखते ही उठ बैठे और बोले कि आप सीट पर बैठ जाइए। मना करने पर भी उन्होंने जबरदस्ती सीट पर बिठा दिया। मेरा मन उनके प्रति कृतज्ञता से भर गया। मैंने उनका धन्यवाद करते हुए उनके घर का पता भी माँग लिया, जिससे उनके साथ सम्पर्क बना सकूँ। इसके दो-तीन दिनों के पश्चात् मैं फिर उसी बस से जा रही थी। मेरे हाथ में समान था। महिलाओं की एक सीट पर एक युवक बैठा हुआ था। मैंने नम्रतापूर्वक सीट खाली करने को कहा, परन्तु वह उठने को तैयार ही नहीं हुआ। अन्य लोगों के कहने पर भी उसके कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। मैं सोचने लगी—एक तो वे सज्जन थे, जो बिना कहे ही उठ बैठे थे और मना करने के बावजूद भी जबरदस्ती बिठा दिया था। और एक यह भलामानस है, जो सबके कहने पर भी ढीठ बना हुआ है। इसके प्रति मन में बहुत निरादर का-सा भाव उठने लगा। सोचने पर निष्कर्ष निकलता कि यह प्रति घृणा के भाव ला रहा है। इसीलिए हमारे महात्मओं ने कहा है: **'आचार परमो धर्मः'** [मनुस्मृति 1:108] अर्थात् सदाचरण (अच्छे व्यवहार का)पालन करना ही मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म है।

प्रायः सभी ने अपने जीवन में अनुभव किया होगा कि जब भी हम किसी के नम्रतापूर्वक और सुशील व्यवहार को देखते हैं, तो बहुत प्रभावति हो जाते हैं। हम संस्कारित और अच्छा पढ़ा-लिखा होगा। इस प्रकार के व्यक्ति से सब मित्रता भी बनाना चाहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि व्यवहार का हमारे जीवन में बहुत महत्त्व है। जहाँ अच्छा

और नम्र व्यवहार सबको मित्र बना लेता है, वहीं गलत और घमण्ड का व्यवहार अपनों को भी दूर कर देता है। इसलिए हमारे ऋषियों ने सबके साथ नम्रता का व्यवहार करने का निर्देश करते हुए लिखा है–

"अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारित तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥"

अर्थात् जो व्यक्ति सबका अभिवादन करता है और बड़ों की सेवा आदि करता है, उसकी चार चीजें बढ़ती जाती हैं। वे चार चीजें हैं–आयु, विद्या, यश और बल। क्योंकि ऐसे व्यक्ति से सभी प्रसन्न रहकर उसे आशीर्वाद देते हैं तथा अपने जीवन के सभी अनुभव बताते हैं। अध्यापक भी ऐसे छात्रों से खुश रहते व उनकी सब समस्याओं का समाधान भी आराम से कर देते हैं। सबसे प्रेम और खुशी पाने के कारण ऐसे लोग अपने जीवन में प्रसन्न रहते हैं। परिणामतः वे विद्या आदि सभी गुण जल्दी ही धारण कर लेते हैं। इससे उनकी यश, कीर्ति आदि बढ़ती है। सदा प्रसन्न रहने से उनकी आयु और बल भी बढ़ते जाते हैं। उनके साथ-साथ उनके माता-पिता एवं परिवार के अन्य लोगों का भी यश बढ़ता है।

इसके विपरीत बुरे व्यवहार से यश, बल आदि कम होते जाते हैं। जैसा कि मनु महाराज ने लिखा है–

"दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेवच॥"

[मनुस्मृति 4:157]

अर्थात् बुरे व्यवहार करने वाले व्यक्ति की संसार में निन्दा होती है। वह दुःख प्राप्त करता, रोगी और छोटी आयु वाला होता है। व्यवहार के इसी महत्त्व को देखते हुए ही महर्षि दयानन्द ने **'व्यवहारभानु'** नामक एक बहुत उपयोगी

पुस्तक लिखी है। व्यवहार के प्रति सबको सचेत करते हुए उन्होंने व्यवहार सीखने का मुख्य साधन विद्या की प्राप्ति माना है। अतः उन्होंने विद्या-प्रापत करने के लिए विशेष बल दिया है। सत्यार्थ-प्रकाश में भी स्वामी जी लिखते हैं–

"माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
सभामध्ये न शोभते हंसमध्ये बको यथा।"

प्रश्न उठता है कि आजकल तो बहुत पढ़े-लिखे बच्चे भी व्यवहार में कुशल नहीं दिखाई देते। फिर इसका क्या कारण है? इसका कारण महर्षि ने माता, पिता और आचार्य का व्यवहार और उनके द्वारा दी गई अनुचित शिक्षा को बताया है। यही कारण है कि उन्होंने इस पुस्तक में आचार्य के लक्षणों के साथ-साथ इस बात पर भी बहुत बल दिया है कि माता-पिता अपने बच्चों को बचपन से ही किस प्रकार की शिक्षा दें और उनके साथ किस प्रकार का व्यवहार करें। इसके अतिरिक्त उन्होंने बच्चों का माता-पिता के प्रति व्यवहार, राजा-प्रजा, पति-पत्नी, मित्र, स्वामी-सेवक सबके आपसी व्यवहारों का भी यथास्थान उल्लेख किया है।

महर्षि के अनुसार उचित और श्रेष्ठ व्यवहार वही है जो धर्म और सत्यतापूर्वक किया जाये। धर्म जानने का साधन विद्या पढ़ना है। अतः उन्होंने **विद्या, सत्य और धर्म का आपस में अटूट सम्बन्ध बताया है।** आजकल के समान कुछ विषयों को पढ़ लेना मात्र विद्या नहीं, **अपितु पदार्थों के यथार्थ स्वरूप को जानकर उनका ठीक-ठाक उपयोग लेना विद्या है। और पदार्थों के यथार्थ अर्थात् सत्य स्वरूप को जानकर उनका उपयोग करना और उनको व्यवहार में लाना ही असली धर्म है। महर्षि के अनुसार, सत्य और धर्म एक ही चीज के दो पहलू हैं। सत्य सैद्धान्तिक पक्ष है, तो उसी का व्यावहारिक पक्ष धर्म कहलाता है।** अर्थात् जिस तथ्य या

बात को हम सत्य कहते हैं, उसी को आचरण या व्यवहार में लाना धर्म है। महर्षि के शब्दों में, **"क्योंकि सत्य व्यवहार करने का नाम 'धर्म' और विपरीत का अधर्म है।"** उनके अनुसार, विद्या-प्राप्ति का फल धार्मिक होना ही है। उन्होंने पुस्तक में दिये सभी तथ्यों को आर्ष शास्त्रों से ग्रहण किया है। यह उनकी अपनी कोरी कल्पना नहीं है। विषय प्रस्तुत करते हुए बीच-बीच में दृष्टान्त देकर महर्षि ने विषय को रोचक भी बना दिया है।

तो फिर प्रश्न उठता है कि व्यवहारभानु पर यह प्रश्नोत्तरी लिखने की आवश्यकता क्या थी? यदि निष्पक्ष दृष्टि से देखा जाए, तो पता चलता है कि महर्षि दयानन्द ऐसे विचारशील व्यक्ति हुए हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति चाहते थे। उनका लेखन भी इसी दृष्टिकोण से हुआ है। उनके सभी तथ्य सटीक और आज भी पूरी तरह सार्थक और उपयोगी हैं। पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण करने और भौतिकता के रंग में रंगे बच्चे और युवापीढ़ी को इस प्रकार के उपयोगी विचारों को पढ़ने की न तो फुरसत है और न रुचि। बड़े लोग भी इसे शाब्दिक रूप में पढ़कर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। जबकि ऋषि के लिखे एक-एक वाक्य के मर्म को समझने के लिए इसे गम्भीरता से पढ़ना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त, बच्चों और युवाओं में भी रुचि उत्पन्न करने के लिए विषय को सरल और रुचिकर ढंग से प्रस्तुत करना आवश्यक समझा गया।

इस दृष्टि से बड़े-बड़े वाक्यों और अनुच्छेदों को प्रश्नों में बाँट कर विषय को प्रस्तुत किया गया है। वैसे तो ऋषि की भाषा सरल ही है, फिर भी व्यावहारिक भाषा का प्रयोग करके और अधिक सरल बनाया गया है। इसके साथ ही

जगह-जगह दी गई परिभाषाओं एवं महत्त्वपूर्ण परन्तु अस्पष्ट तथ्यों को अधिक स्पष्ट किया गया है। उन्हें अलग-अलग तथा छोटे-छोटे बिन्दुओं में बाँट दिया गया है। बीच-बीच में अपनी ओर से नये प्रश्न डालकर भी विषय को स्पष्ट किया गया है। विभिन्न विषयों के आरम्भ होने से पहले उनके ऊपर शीर्षक दे दिये गये हैं। सभी दृष्टान्तों को भी छोटे-छोटे प्रश्नों में बाँट दिया गया है। इससे ये दृष्टान्त केवल रोचक ही नहीं बन गये, अपितु पाठक को इनका भाव एवं प्रयोजन भी अधिक स्पष्ट हो रहे हैं। अनेक प्रश्नों के उत्तर केवल एक-दो शब्दों में ही हैं, तो अनेकों के एक-दो वाक्यों में। (इनकी सूची **परिशिष्ट-I** और **परिशिष्ट-II** में पृष्ठ संख्या और प्रश्न संख्या के आधार पर दी जा रही है।) कुछ प्रश्नों के उत्तर लम्बे भी हैं। यह सब विषय-वस्तु पर निर्भर है। पुस्तक के बीच में जिन परिभाषाओं को स्पष्ट करने के लिए शब्दावली में परिवर्तन किया गया है, अन्त में **परिशिष्ट-I** के अन्दर ऋषि के अपने ही शब्दों में तथा अकरादि क्रम से उनको दे दिया गया है। उनके साथ प्रसंग बताते हुए कोष्टक[ ] के अन्दर पुस्तक की पृष्ठ संख्या और प्रश्न संख्या भी दे दी गई है। इससे उन्हें ढूँढ़ने में कठिनाई नहीं होगी।

बच्चों के लिए इस प्रकार की शैली और विधा रुचिकर और सरल होती है। अतः विद्यालयों, गुरुकुलों और आर्यवीर दल के शिविरों के बच्चों को यह पुस्तक पढ़ने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। विभिन्न स्तर के विद्यार्थियों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रश्नों को लेकर संवाद, प्रतियोगिताएँ, क्विज़ और परीक्षाएँ आयोजित करके उनकी रुचि बढ़ाई जा सकती है। बच्चों में वैदिक विचारधारा का प्रवेश हो सके, इसी उद्देश्य को लेकर यह पुस्तक लिखी गई

है। इससे पहले **'महर्षि दयानन्द ग्रन्थ-परिचय (प्रश्नोत्तरी'** नामक पुस्तिका भी इसी दृष्टि से लिखी गई थी। उसे पाठकों ने पसन्द किया है। उसी शृंखला में यह दूसरी पुस्तक है। आशा है कि पाठकगण महर्षि दयानन्द के विचारों की गहराई और सार्थकता को समझते हुए तदनुसार अपना आचरण बनाकर सच्चे अर्थों में आर्य बनने का प्रयत्न करेंगे।

आभार-अभिव्यक्ति

सर्वप्रथम मैं सर्वप्रेरक सवितादेव परमात्मा का हृदय से धन्यवाद करती हूँ जिनके द्वारा दी गई सामर्थ्य, अपार कृपा और प्रेरणा से यह लेखन-कार्य सम्पन्न हुआ। इसके पश्चात्, मैं अपने पूज्य गुरु **स्वामी चित्तेश्वरानन्द जी सरस्वती** के चरणों में नमन करती हूँ, जिन्होंने अपने आशीर्वचन से मुझे कृतकृत्य किया।

मैं आर्य जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् एवं दर्शनाचार्य **आचार्य आनन्द प्रकाश जी** (आन्ध्र प्रदेश) एवं **आचार्य हरिप्रसाद जी** के प्रति अति कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने अपना अमूल्य समय एवं सुझाव प्रदान करके इस कार्य को और अधिक उपयोगी बनाने में सहायता प्रदान की तथा **'दो शब्द'** एवं **सम्मति** लिखकर मेरा उत्साह-वर्धन किया। इसके अतिरिक्त, मैं अपने भाई **आचार्य ब्र, राजसिंह जी आर्य** का भी हार्दिक धन्यवाद करती हूँ, जिन्होंने **प्राक्कथन** लिखकर मुझे अनुगृहीत किया। मैं **श्री कवल मलिक जी** (जे.डी. कम्प्यूटर्स, 2157, ऑट्रम लेन, किंग्जवे कैम्प) की भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने बड़ी उदारता और सहृदयता के साथ इस पुस्तक के टंकण कार्य (टाइप) को सम्पन्न किया।

-निवेदिका-

कञ्चन आर्या

मो. 09289804948, 09711839596

महर्षिकृत भूमिका

प्र.1. महर्षि दयानन्द के अनुसार किस व्यक्ति को सर्वत्र सुख की प्राप्ति होती है?

उ. जो धर्मयुक्त ठीक–ठीक व्यवहार करता है, उसको सर्वत्र सुख की प्राप्ति होती है।

प्र.2. सदा दु:खी कौन–सा व्यक्ति होता है?

उ. जो धर्मयुक्त व्यवहार के विपरीत वर्तता है, वह सदा दु:खी होता है और अपनी हानि करता है।

प्र.3. ऋषि की ये दोनों प्रकार की मान्यताएँ किस आधार पर हैं?

उ. ऋषि के शब्दों में, **"मैंने परीक्षा करके निश्चय किया है"**। अत: परीक्षण के आधार पर ही उनकी ये मान्यताएँ हैं।

प्र.4. उचित व्यवहार के लिए महर्षि ने क्या उदाहरण प्रस्तुत किया है?

उ. उनके अनुसार, जब कोई सभ्य मनुष्य विद्वानों की सभा में अथवा किसी के पास जाकर नम्रतापूर्वक नमस्ते आदि करके योग्यतानुसार अपने स्थान पर बैठ जाता है, दूसरे की बात को ध्यानपूर्वक सुनता है, तदनुसार उनके सिद्धान्त को जानकर अभिमान रहित भाव से शंका–समाधान आदि करता है, तो इससे सज्जन लोग प्रसन्न होते हैं और उसका सत्कार करते हैं। इसके विपरीत, जो अण्ड–बण्ड बकता अर्थात् व्यर्थ में प्रसंग रहित बोलता रहता है, उसका सज्जन लोग तिरस्कार करते हैं।

प्र.5. किस मनुष्य का विश्वास और सम्मान शत्रु भी करते हैं?

उ. धार्मिक मनुष्य का।

प्र.6. किसका विश्वास मित्र भी नहीं करते?

उ. अधर्मी मनुष्य का।

प्र.7. किस मनुष्य का कार्य नहीं बिगड़ता?

उ. जो मनुष्य सुशील होता है, चाहे वह थोड़ी विद्या पढ़ा हो उसका कोई कार्य नहीं बिगड़ता।

प्र.8. महर्षि ने व्यवहारभानु ग्रन्थ किस आधार पर लिखा?

उ. वेद आदि शास्त्रों तथा सत्याचारी विद्वानों की रीति के आधार पर।

प्र.9. इस ग्रन्थ को लिखने का उद्देश्य क्या है?

उ. महर्षि ने यह ग्रन्थ सब मनुष्यों की उत्तम शिक्षा के लिए लिखा। उनकी इच्छा थी कि सब मनुष्य स्वयं पढ़कर व दूसरे को पढ़ाकर अपने, अपनी संतान और विद्यार्थियों के आचार को अच्छा बनायें। परिणामतः वे जीवन में सुखी रहें।

प्र.10. यह ग्रन्थ किस भाषा में लिखा गया है?

उ. यह ग्रन्थ सरल हिन्दी भाषा में लिखा गया है, परन्तु कहीं-कहीं प्रमाणों के लिए शास्त्रों से संस्कृत भाषा में भी उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं।

प्र.11. पुस्तक की शैली कैसी है?

उ. पुस्तक की शैली सरल है। विषय को समझाने के लिए बीच-बीच में रोचक दृष्टान्त भी प्रस्तुत किये गये हैं। इससे पाठक लेखक के अभिप्राय को सुगमता से समझकर अपने व्यवहार व स्वभाव को सुधार सकता है और तदनुसार उत्तम व्यवहार कर सकता है।

प्र.12. इस ग्रन्थ की रचना महर्षि ने कब की?

उ. इस ग्रन्थ की रचना महर्षि ने संवत् 1936 में फाल्गुन शुक्ला, 15 तिथि को की।

विषय-वस्तु

प्र.13. सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति का साधन क्या है?

उ. यथायोग्य व्यवहार।

अच्छी शिक्षा

प्र.14. अच्छी शिक्षा से मनुष्य के किन ऩलों की सिद्धि होती है?

उ. अच्छी शिक्षा से मनुष्य के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ऩलों की सिद्धि होती है।

प्र.15. अच्छी शिक्षा के बिना जीवन कैसा होता है?

उ. अच्छी शिक्षा के बिना मनुष्य का जीवन पशु के समान और दु:खी होता है।

प्र.16. महर्षि ने व्यवहार-सम्बन्धी शिक्षा का विधान क्यों किया?

उ. बालक से लेकर वृद्ध पर्यन्त मनुष्यों के सुधार के लिए। क्योंकि यह सुशिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

पण्डित (अध्यापक) के लक्षण

प्र.17. व्यवहारभानु में सर्वप्रथम किसके लक्षण बताये गये हैं?

उ. सर्वप्रथम पढ़ाने और शिक्षा प्रदान करने वाले पण्डित के लक्षण बताये गये हैं।

प्र.18. ये लक्षण कितने श्लोकों के माध्यम से बताये गये हैं?

उ. 6 श्लोकों के माध्यम से।

प्र.19. ये श्लोक कहाँ से लिये गये हैं?

thearyasamaj.org

उ. महाभारत के उद्योग पर्व में उल्लिखित '**विदुरप्रजागर**' के 33वें अध्याय से लिये गये हैं।

प्र.20. प्रत्येक श्लोक में बताये गये लक्षणों को क्रमशः बतायें।

उ. पहले श्लोक[1] में निम्नलिखित लक्षण बताये गये हैं :–

(1) **आत्मज्ञानम्**–जिसे परमात्मा और जीवात्मा का यथार्थ ज्ञान है;

(2) **समारम्भः**–आलस्य छोड़कर सदा उद्योगी (परिश्रमी);

(3) **तितिक्षा**–सुख दुःख आदि को सहन करने वाला;

(4) **धर्मनित्यता**–धर्म का नित्य सेवन करने वाला; एवं

(5) **यमर्था नापकर्षन्ति**–जिसे कोई पदार्थ (विषय) धर्म से छुड़ा कर अधर्म की ओर नहीं खींच सकते।

प्र.21. इस श्लोक में आत्मा शब्द से क्या अर्थ लिया गया है?

उ. परमात्मा और जीवात्मा।

प्र.22. तितिक्षा शब्द का अर्थ बतायें।

उ. सुख दुःखादि को सहन करना।

प्र.23. दूसरे श्लोक[2] में पण्डित के कौन-कौन से लक्षण बताये गये हैं?

उ. दूसरे श्लोक में पण्डित के निम्नलिखित लक्षण बताये गये हैं :–

(1) **प्रशस्तानि निषेवते**–जो सदा धर्मयुक्त कर्मों को

---

1. **"आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।**
   यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते॥"
2. **"निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।**
   अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम्॥"

करने वाला;

(2) **निन्दितानि न सेवते**–निन्दित अधर्मयुक्त कर्मों को कभी सेवन न करने वाला;

(3) **अनास्तिक**–जो नास्तिक नहीं अर्थात् ईश्वर, वेद और धर्म का कभी विरोध न करने वाला; तथा

(4) **श्रद्दधानः**–श्रद्धावान् अर्थात् परमात्मा, सत्यविद्या और धर्म के प्रति दृढ़ विश्वासी।

प्र.24. नास्तिक से क्या तात्पर्य लिया गया है?

उ. ईश्वर, वेद और धर्म के विरोधी को नास्तिक कहा गया है।

प्र.25. श्रत् अथवा श्रद्धा के क्या अर्थ लिये गये हैं?

उ. परमात्मा, सत्यविद्या और धर्म के प्रति दृढ़ विश्वासी।

प्र.26. पण्डित की बुद्धिमत्ता के प्रथम लक्षण कौन-से श्लोक में और क्या-क्या बताये गये हैं?

उ. पण्डित की बुद्धिमता के प्रथम लक्षण तीसरे श्लोक[1] (विदुरप्रजागर अ. 33:22) में बताये गये हैं। ये लक्षण निम्नलिखित हैं :–

(1) **क्षिप्रं विजानाति**–जो वेदादि शास्त्रों के वचनों और दूसरे के अभिप्राय को शीघ्र ही समझ लेता है;

(2) **चिरं शृणोति**–जो दीर्घकाल तक इन उपरोक्त वचनों को ध्यान देकर सुनता है;

(3) **अर्थं च विज्ञाय कामात् न भजते**–जो किसी

1. **"नाप्राप्यमभिवोछन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।**
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥"

बात को सुनकर ठीक प्रकार समझ लेता है। तथा अभिमान रहित और शान्त रहकर काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक आदि दुष्ट गुणों से अलग रहता है; तथा

(4) **परार्थे असंपृष्टो न हि उपर्युक्ते**—जो दो व्यक्तियों के मध्य हो रहे संवाद में बिना प्रसंग के तथा अनुपयुक्त भाषण आदि व्यवहार नहीं करता।

प्र.27. क्या दो व्यक्तियों के संवाद के बीच में ठीक बात भी नहीं बोलनी चाहिए?

उ. वैसे तो दो व्यक्तियों के बीच में हो रही बातचीत में बिना पूछे बोलना असभ्यता ही कहलाती है, अतः नहीं बोलना चाहिए। यदि वे कुछ परामर्श मांगें तो बोल सकते हैं। इसके अतिरिक्त यदि कभी किसी बहुत ही अनुचित या अन्यायपूर्ण बात को काटना चाहें, तो पहले उनसे अनुमति माँगकर नम्रतापूर्वक अपने विचार संक्षेप में प्रकट कर सकते हैं। यही शिष्ट व्यवहार है।

प्र.28. पण्डितों के लक्षण बताने वाले चौथे श्लोक[1] में कौन-से लक्षण कहे गये हैं?

उ. चौथे श्लोक में पण्डित के तीन लक्षण कहे गये हैं, जो निम्नलिखित हैं :—

(1) **अप्राप्यं न अभिवोछन्ति**—जो मनुष्य ऐसे पदार्थों को कभी इच्छा नहीं करते, जो उन्हें प्राप्त हो ही नहीं सकते;

(2) **नष्टं शोचितुं न इच्छन्ति**—जो नष्ट-भ्रष्ट हो

1. **"प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।**
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते॥"

चुके एवं अदृष्ट पदार्थों के शोक करने की इच्छा भी नहीं करते; तथा

(3) **आपत्सु न मुह्यन्ति**–जो मनुष्य बड़े-बड़े दु:खों और मुसीबतों में भी नहीं घबराते।

जिन मनुष्यों में ये लक्षण पाये जाते हैं, उनकी बुद्धि पण्डितों की होती है।

प्र.29. इन उपरिलिखित तीनों लक्षणों का पण्डित से क्या सम्बन्ध है?

उ. गहराई से सोचने पर स्पष्ट होता है कि जिस मनुष्य में ये लक्षण या गुण नहीं होंगे, वह प्राय: किसी न किसी शोक और दु:ख से ग्रस्त रहेगा। क्योंकि जीवन में वियोग, नाश और मुसीबतें तो प्राय: आती ही रहती हैं। इसके अतिरिक्त, कल्पना लोक में विचरते हुए वह असम्भव पदार्थों की प्राप्ति के स्वप्न देखता रहेगा या आशा बनाये रहेगा, जिनकी प्राप्ति न होने पर निराश और कुण्ठित हो जाएगा। क्या ऐसा व्यक्ति विद्या प्राप्त या प्रदान कर सकता है? अत: बुद्धिमान या पण्डित के लिए उपरिलिखित गुणों का होना आवश्यक है।

प्र.30. पांचवें श्लोक[1] में पण्डित के किन लक्षणों का उल्लेख है?

उ. इस श्लोक में पण्डित के जिन लक्षणों का उल्लेख है, उनका सम्बन्ध सीधा ही पढ़ाने वाले के गुणों से है। ये लक्षण निम्नलिखित हैं:–

(1) **प्रवृत्तवाक्**–जिसकी वाणी सभी प्रकार की विद्याओं को ग्रहण करने वाली;

---

1. **"श्रुतं प्रज्ञानुगम् यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।**
असंभिन्नार्यमर्याद: पण्डिताख्यं लभेत स:॥"

(2) **चित्रकथः**—जो अद्भुत प्रकार की विद्याओं से सम्बन्धित कथाओं को कहने में समर्थ है (महर्षि) अथवा विविध विधाओं को कहने में समर्थ है या एक विशय को विविध प्रकार से प्रस्तुत करने में समर्थ है;

(3) **ऊहवान्**—जो पहले न जाने गये पदार्थों को भी तर्कपूर्वक और शीघ्र जान लेता है;

(4) **प्रतिभानवान्**—जो सुनी, पढ़ी और विचारी हुई विद्याओं को दूसरों के समक्ष व्यक्त करने की योग्यता रखता है; तथा

(5) **ग्रन्थस्य आशु वक्ता**—जो सब विद्याओं के ग्रन्थों को शीघ्र ही दूसरे मनुष्यों को पढ़ाने की सामर्थ्य रखता है।

प्र.31. बुद्धिमान् और पण्डित के लक्षणों को बताने वाले छठे अथवा अन्तिम श्लोक[में क्या कहा गया है?

उ. छठे या अन्तिम श्लोक में कहा गया है कि जिस मनुष्य में निम्नलिखित लक्षण या गुण पाये जाते हैं, वह पण्डित कहलाने के योग्य है :—

(1) **श्रुतं प्रज्ञानुगम्**—जिसकी सुनी और पढ़ी हुई विद्या सदा अपनी बुद्धि के अनुकूल होती है;

(2) **यस्य प्रज्ञा श्रुतानुगा एव**—जिसकी बुद्धि और क्रिया पढ़ी और सुनी हुई विद्याओं के अनुकूल होती है; तथा

(3) **असंभिन्न-आर्य-मर्यादः**—जो आर्यों अर्थात् धार्मिक एवं श्रेष्ठ पुरुषों की मर्यादा की रक्षा करने वाला तथा दुष्टों (अधार्मिक एवं डाकुओं

आदि) के आचरण को नष्ट करने वाला है।

प्र.32. 'सुना हुआ बुद्धि के अनुकूल और बुद्धि व क्रिया पढ़े हुए के अनुकूल' होने का क्या तात्पर्य है?

उ. तात्पर्य यह है कि पण्डित जो पढ़े व सुने उसकी बुद्धि ऐसी होनी चाहिए कि वह तर्कपूर्वक उस तत्त्व को स्वीकार कर ले अर्थात् उस तत्त्व की यथार्थता को समझ व ग्रहण कर सके। इसके विपरीत, वह बुद्धि से जो सोचे और समझे वह भी शास्त्रों के अनुकूल ही सिद्ध होना चाहिए, उनके विपरीत नहीं। कहने का तात्पर्य यह है कि वही मनुष्य पण्डित हो सकता है, जिसकी बुद्धि व तर्क शास्त्रों में कही विद्या से मेल खा जाते हैं। अर्थात् जो शास्त्रों में पढ़ी-सुनी विद्या को सत्य एवं अनुकूल समझ व मान लेता है तथा तदनुसार व्यवहार में भी लाता है। उसकी बुद्धि कुतर्क वाली एवं दुराग्रही नहीं होनी चाहिए।

प्र.33. ऊपर लिखित समस्त लक्षणों वाले शिक्षक से क्या लाभ है?

उ. इन समस्त लक्षणों वाला शिक्षक सत्य पुरुष और बुद्धिमान् होता है। ऐसे पढ़ाने और पढ़ने वालों से विद्या और धर्म की सदा वृद्धि होती है। परिणामतः सुख और आनन्द बढ़ता जाता है।

प्र.34. यदि ऐसे गुणों वाले पढ़ने-पढ़ाने वाले न मिलें तो क्या परिणाम होगा?

उ. जिनमें ये गुण नहीं पाये जाते वे पढ़ने-पढ़ाने वाले मूर्ख होते हैं। इनके पठन-पाठन से अविद्या और अधर्म की वृद्धि होती है। परिणामतः सुख के स्थान पर दुःख ही बढ़ता जाता है।

मूर्ख के लक्षण

प्र.35. मूर्ख के कौन-कौन से लक्षण महर्षि ने बताये हैं?

उ. महर्षि ने महाभारत : उद्योगपर्व : विदुरप्रजागर : अध्याय 33 : श्लोक 30-31 के आधार पर मूर्ख के निम्नलिखित लक्षण बताये हैं :-

(1) **अश्रुतः च समुन्नद्धः**—जो किसी भी विद्या को न तो पढ़ता है और न ही किसी विद्वान् द्वारा सुनता है, परन्तु फिर भी बहुत घमण्डी है;

(2) **दरिद्रः च महामना**—दरिद्र होता हुआ भी धन-सम्बन्धी बड़े-बड़े काम करने की इच्छा रखता है;

(3) **अकर्मणा अर्थांश्च प्रेप्सुः**—स्वयं कर्म (परिश्रम) तो कुछ नहीं करता, पर बड़े-बड़े फलों की इच्छा रखता है;

(4) **अनाहूतः प्रविशति**—जो बिना बुलाये ही सभाओं में प्रवेश कर जाता है। वहां अपना सत्कार और आदरणीय स्थान पर बैठने की इच्छा रखता है या इस प्रकार बैठता व अन्य आचरण करता है, जो सज्जनों को अप्रिय लगते हैं;

(5) **अपृष्टः बहु भाषते**—जो बिना पूछे ही व्यर्थ में बहुत कुछ असम्बद्ध ही बोलता रहता है; तथा

(6) **अविश्वस्ते विश्वसिति**—अविश्वसनीय लोगों पर विश्वास कर लेता है, जिसके फलस्वरूप अपनी हानि कर लेता है।

प्र.36. मूर्ख के लक्षणों को स्पष्ट करने के लिए कौन-सा दृष्टान्त दिया गया है?

उ. दरिद्र शेखचिल्ली और बनिये का।

(प्र. दरिद्र शेखचिल्ली एवं बनिये का दृष्टान्त किस प्रसंग में दिया गया है?

उ. मूर्ख के लक्षण बताते हुए शेखचिल्ली का दृष्टान्त दिया गया है।)

दृष्टान्त : शेखचिल्ली और बनिया

प्र.38. इस दृष्टान्त में किसने बिना सामर्थ्य के ही ऊँचे-ऊँचे मनोरथ और भविष्य की कल्पनाएँ गढ़ी थीं?

उ. बनिये और शेखचिल्ली, दोनों ने ही।

प्र.39. बनिये ने क्या मनोरथ किया?

उ. बनिये ने दस रुपये उधार लेकर घी खरीदा। उसे घड़े में भरकर घड़ा उठाने के लिए मजदूर को खोजने लगा। तब शेखचिल्ली चार आने की मजदूरी पर घड़ा उठाने को तैयार हो गया। जब शेखचिल्ली घी उठाकर जा रहा था, तब बनिया भविष्य की कल्पनाओं में खोकर मनोरथ करने लगा कि दस रुपये का यह घी ग्यारह रुपये में बिकेगा। दस रुपये का उधार चुकाकर बाकी एक रुपया बच जायेगा। इस प्रकार, दस ेरों में दस रुपये बच जायेंगे। तब क्रमशः दस से सौ, सौ से हज़ार, हज़ार से लाख और लाख से करोड़ बनते जायेंगे। इनसे मैं सब जगह कोठियाँ बनाऊँगा। तब सब राजा और धनी लोगों को मैं कर्ज दूँगा। इस प्रकार, वे सब मेरे कर्जदार हो जायेंगे, आदि।

प्र.40. शेखचिल्ली ने किस तरह के मनोरथ किये?

उ. घी का घड़ा ले जाते हुए शेखचिल्ली कल्पना करने लगा कि चार आने मजदूरी मिलने पर मैं रुई खरीदकर सूत कातूँगा और बेचूँगा। इससे मुझे आठ आने मिलेंगे। फिर उनसे

रुई खरीदकर सूत कातूँगा। इस प्रकार, क्रमशः एक रुपया और फिर दो रुपये हो जायेंगे। इन रुपयों से एक बकरी खरीदूँगा। उस बकरी के कच्चे बच्चे होंगे, जिन्हें बेचकर एक गाय लूँगा। गाय के बच्चे बेचकर भैंस, भैंस के बच्चे बेचकर घोड़ी, घोड़ी के बच्चे बेचकर हथिनी और हथिनी के बच्चे बेचकर दो बीवियों के साथ शादी करूँगा। एक का नाम प्यारी और दूसरी का नाम बेप्यारी रखूँगा। तब उनके लड़के होंगे। जब प्यारी के लड़के आकर गोद में बैठेंगे तो उन्हें बिठा लूँगा, पर जब बेप्यारी के लड़के बैठने आयेंगे, तो उन्हें मना कर दूँगा।

प्र.41. ऐसे मनोरथ करके ही तो सब व्यापार, नौकरी आदि शुरु करते हैं। फिर शेखचिल्ली और बनिये के मनोरथों का क्या हुआ?

उ. जब शेखचिल्ली मनोरथ करते हुए बेप्यारी के लड़कों को गोद में बिठाने के लिए मना कर रहा था, तो उसने सिर हिला दिया। इससे घड़ा गिर कर टूट गया और घी मिट्टी में बिखर गया। इस प्रकार, दोनों के मनोरथ ही मिट्टी में मिल गये।

प्र.42. घी गिरने पर दोनों ने क्या किया?

उ. घी गिरने पर दोनों ही रोने लगे और अपने-अपने मनोरथों का हवाला देकर कहने लगे कि हमारा तो बना-बनाया घर और कमाया हुआ लाभ ही बिखर गये। दोनों एक-दूसरे को मूर्ख कहते हुए मार-पीट करने लगे। फिर शेखचिल्ली अपने घर की ओर भाग गया और बनिया भी मिट्टी में मिले घी को ठीकरे में डालकर अपने घर की ओर चला गया।

प्र.37. इस दृष्टान्त के द्वारा महर्षि क्या शिक्षा देना चाहते हैं?

उ. इस दृष्टान्त द्वारा महर्षि बताना चाह रहे हैं कि बिना सामर्थ्य के ऊँचे-ऊँचे मनोरथ रखना, तथा बिना परिश्रम के ही बड़े-बड़े पदार्थों को प्राप्त करने की आशा और भविष्य के कल्पना लोक में विचरण करना मूर्खता है। इस प्रकार के मनुष्यों को ही विद्वान् लोग मूर्ख कहते हैं। अतः अपनी सामर्थ्य के अनुसार ही इच्छायें रखनी चाहिए, तभी वे पूर्ण होंगी तथा परिश्रम पूर्वक तदनुसार पदार्थों की प्राप्ति की आशा करनी चाहिए।

विद्यार्थियों के दोष

प्र.43. विद्यार्थियों को कौन-कौन से सात दोष गिनाये गये हैं?

उ. विद्यार्थियों के लिए निम्नलिखित 7 दोष गिनाये गये हैं :-

(1) **आलस्य**, (2) **मद-मोह** अर्थात् अभिमान, नशा करना और मूर्खता, (3) **चापल्य** या चंचलता, (4) **गोष्ठी करना** अर्थात् व्यर्थ में इधर-उधर की अण्ड-बण्ड बातें करना, (5) **स्तब्धता** अर्थात् जड़ता (समझ न पाना) तथा कभी पढ़ना और कभी न पढ़ना, (6) **अभिमान** या व्यर्थ घमण्ड करना, एवं (7) **अत्यागित्व** अर्थात् त्याग की भावना का न होना यानि लोभ लालच करना।

प्र.44. ये सब दोष क्यों माने जाते हैं?

उ. क्योंकि जिनमें ये दोष पाये जाते हैं, वे विद्या प्राप्ति में सफल नहीं होते।

विद्या और सुख

प्र.45. विद्याप्राप्ति और सुख का परस्पर क्या सम्बन्ध है?

उ. विद्याप्राप्ति और सुख का परस्पर विरोध है, क्योंकि

विद्या ग्रहण करने के लिए खूब परिश्रम करना पड़ता है। आलस्य और रूप-रस आदि विषयों का सुख चाहने वाले परिश्रम नहीं कर सकते। अतः सुख की इच्छा को त्याग कर ही विद्या की प्राप्ति हो सकती है। जैसे–नींद का सुख, टी. वी. देखने का सुख लेते रहेंगे, तो विद्या में पीछे रह जायेंगे।

प्र.46. इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए महर्षि ने कौन-सा प्रमाण प्रस्तुत किया है?

उ. इसके लिए महर्षि ने महा.:उद्योग.:विदुर.:अ.40:7 का निम्न श्लोक प्रस्तुत किया है :–

"सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम् ।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्॥"

अर्थात् जिसको सुख चैन की इच्छा है, उसको विद्या कहाँ और जिसका चित्त विद्या ग्रहण करने-कराने में लगा है, उसको विषय सम्बन्धी सुख चैन कहाँ। इसलिए विषय सुख चाहने वाला विद्या को छोड़े और विद्यार्थी (विद्या चाहने वाला) विषय सुख से अवश्य अलग रहे।

नहीं तो, परम धर्मरूप विद्या का पढ़ना-पढ़ाना कभी नहीं हो सकेगा।

ब्रह्मचर्य और विद्या प्राप्ति

प्र.47. विद्या प्राप्ति के लिए मनुष्य को अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत करना चाहिए?

उ. विद्या प्राप्ति के लिए मनुष्य को अपना जीवन **ब्रह्मचर्यपूर्वक** व्यतीत करना चाहिए।

प्र.48. महर्षि ने ब्रह्मचर्य से क्या तात्पर्य लिया है?

उ. महर्षि ने ब्रह्मचर्य का व्यापक अर्थ लिया है। (1) **जितेन्द्रियता** (2) **वेद आदि सत्यशास्त्रों का अध्ययन**, (3) **परमात्मा की उपासना का अभ्यास** आदि कर्म

करना, तथा (4) **आचार्य कुल में जाकर विद्या–ग्रहण** के लिए प्रयत्न करना–ये सब गुण एवं कर्म ब्रह्मचर्य के अन्तर्गत आते हैं।(यहाँ पर चौथा बिन्दु आगे दी गई ब्रह्मचारी की परिभषा से ले लिया गया है।)

प्र.49. ब्रह्मचर्य से क्या–क्या लाभ है? इससे विद्या की प्राप्ति कैसे होती है?

उ. महर्षि ने महाभारत के श्लोकों को उद्धृत करते हुए लिखा है कि जो मनुष्य जन्म से लेकर मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रहते हैं, उन्हें :–

(1) सभी शुभ गुणों की प्राप्ति होती है;

(2) इस लोक अर्थात् सांसारिक सुखों के साथ–साथ उन्हें सर्वानन्दस्वरूप परमात्मा का भी आनन्द प्राप्त होता है;

(3) ब्रह्मचारी सत्य में रमण करने वाले, शान्त, उत्कृष्ट और शुभ गुणों से युक्त होते हैं; तथा

(4) उनका शरीर रोग रहित व पराक्रम से युक्त होता है; तथा

(5) इन उपरोक्त गुणों के कारण उनके बुरे काम और दु:ख नष्ट हो जाते हैं तथा वे धर्मयुक्त कर्म करते हुए सब सुखों को प्राप्त करते हैं।

प्र.50. ब्रह्मचर्य से विद्या की प्राप्ति कैसे होती है?

उ. इन सब गुणों और विशेषताओं के कारण से मनुष्य अच्छा विद्यार्थी और अच्छा अध्यापक बन सकता है। अत: ब्रह्मचर्य विद्या प्राप्ति में सहायक है।

शूरवीर

प्र.51. महर्षि ने शूरवीर किन्हें कहा है?

उ. दृढ़, उत्साही और उद्योगी मनुष्यों को ही **शूरवीर**

कहा है।

प्र.52. उन्होंने कितने प्रकार के शूरवीर माने हैं?

उ. महर्षि ने निम्नलिखित प्रकार के शूरवीर माने हैं, क्योंकि इन सब में दृढ़ता, उत्साह और परिश्रम आदि गुण भरपूर पाये जाते हैं:–

(1) वेद आदि शास्त्रों को पढ़ने-पढ़ाने वाले;
(2) दुष्टों का दलन (नाश) और श्रेष्ठों का पालन (रक्षण) करने वाले;
(3) गुरु अर्थात् निष्कपट व परोपकारी अध्यापकों की सेवा करने वाले (गुरुशुश्रूषा);
(4) अपने पिता (जनक) की सेवा करने वाले (पितृशुश्रूषा);
(5) माता की सेवा व परिचर्या करने वाले;
(6) संन्यासी होकर सर्वत्र भ्रमण करके परोपकार करने वाले;
(7) वानप्रस्थ ग्रहण करके तदनुकूल कर्म करने वाले;
(8) गृहाश्रम के व्यवहार में कुशल; तथा
(9) अतिथियों की पूजा या सेवा करने वाले।

प्र.53. महर्षि ने गुरु शब्द से क्या तात्पर्य लिया है?

उ. महर्षि ने निष्कपट और परोपकारी अध्यापक को ही गुरु कहा है। (इस प्रकार, धन के लोभी अध्यापक एवं उपदेशक गुरु नहीं कहे जा सकते।)

प्र.54. सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति किन्हें होती है?

उ. जो मनुष्य अपना तन, मन, धन, विद्या और धर्म को सदा शुभ गुणों को ग्रहण करने में लगा देते हैं, वे ही सब सुखों को प्राप्त करते हैं।

शिक्षा और विद्या

प्र.55. क्या शिक्षा और विद्या–ये दोनों शब्द पर्यायवाची हैं?

उ. शिक्षा और विद्या–ये दोनों शब्द पर्यायवाची **नहीं** हैं।

प्र.56. शिक्षा का क्या अर्थ है?

उ. जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्या आदि दोषों को छोड़ के सदा आनन्दित हो सके, वह **शिक्षा** कहलाती है।

(यहाँ **'आदि'** शब्द से सभ्यता, जितेन्द्रियता आदि गुण लिये जाने चाहिए। देखिए **: स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश–शिक्षा (22)** के अंतर्गत।)

प्र.57. विद्या किसे कहते हैं?

उ. जिससे किसी पदार्थ के स्वरूप को ठीक–ठीक जानकर उससे उपकार लेकर अर्थात् उसका ठीक प्रकार से उपयोग करके अपने और दूसरों के लिए सुख प्राप्त करा सकें, वह **विद्या** कहाती है।

प्र.58. अविद्या क्या है?

उ. जिससे पदार्थों के स्वरूप को उल्टा जानकर अपना और पराया अनुपकार लेवें, वह अविद्या कहाती है। अर्थात् पदार्थों के स्वरूप को ठीक–ठीक न जानकर, उनका दुरुपयोग करके अपनी और दूसरों की हानि करना **अविद्या** है।

प्र.59. विद्या की प्राप्ति और अविद्या के नाश के लिए क्या-क्या कर्म करने चाहिए?

उ. विद्या की प्राप्ति और अविद्या के नाश के लिए वर्णोच्चारण से लेकर वेदज्ञान की शिक्षा आवश्यक है। इसके लिए ब्रह्मचर्य आदि का पालन करना चाहिए।

freeamitamaj.org

प्र.60. ब्रह्मचारी किसे कहते हैं?

उ. जो जितेन्द्रिय होकर ब्रह्म अर्थात् वेद की विद्या प्राप्त करने के लिए तथा आचार्य के कुल में जाकर विद्या-ग्रहण के लिए प्रयत्न करे।

माता-पिता और आचार्य

प्र.61. आचार्य किसे कहते हैं?

उ. जो विद्यार्थी को धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षापूर्वक विद्या देने के लिए तन, मन और धन से अत्यन्त प्रेमपूर्वक प्रयत्न करे, उसको **आचार्य** कहते हैं।

प्र.62. मनुष्य का जीवन किससे उत्तम बनता है?

उ. मनुष्य का जीवन **माता, पिता और आचार्य की शिक्षा से** उत्तम बनता है।

प्र.63. किस मनुष्य को सौभग्यशाली मानना चाहिए?

उ. जिस मनुष्य का जन्म धार्मिक विद्वान् माता, पिता के घर और विद्या भी धार्मिक विद्वान् आचार्य से प्राप्त हो, उस मनुष्य को सौभग्यशाली मानना चाहिए।

प्र.64. माता और पिता द्वारा अपने बच्चों को कितने वर्ष की आयु तक शिक्षा प्रदान करने का विधान है?

उ. जन्म से लेकर पाँच अथवा आठ वर्ष की आयु तक।

प्र.65. इस पाँच या आठ वर्ष की छोटी-सी आयु तक माता-पिता बच्चों को क्या शिक्षा प्रदान करेंगे?

उ. यह छोटी आयु ही मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन की नींव होती है। इस अवस्था में माता-पिता अपनी संतान को अच्छी भाषा बोलने; खान-पान, उठने-बैठने और वस्त्रधारण करने की रीति; माता-पिता आदि बड़ों का सम्मान करने; बड़ों के सामने मनमर्जी का व्यवहार न करने; शिष्टाचार के विरुद्ध

आचरण न करने आदि की शिक्षा प्रतिदिन दे सकते हैं। जैसे–जैसे उनका शारीरिक और बौद्धिक सामर्थ्य बढ़ता जाता है, उसके अनुसार अच्छी–अच्छी बातें सिखाई जा सकती हैं।

प्र.66. पाँच या आठ वर्ष की आयु के पश्चात् बच्चों को शिक्षा कौन प्रदान करेगा?

उ. आचार्य।

प्र.67. क्या तब माता–पिता बच्चों को शिक्षा नहीं दे सकते?

उ. हमारी प्राचीन वैदिक व्यवस्था के अनुसार महर्षि का मन्तव्य था कि पाँच या आठ वर्ष की आयु के पश्चात् कोई बच्चा घर में नहीं रहना चाहिए। शिक्षा प्राप्ति के लिए उनका गुरुकुलों में जाना आवश्यक है। अतः वहाँ आचार्य ही शिक्षा प्रदान करेगा, माता–पिता नहीं।

दूसरा, सभी माता–पिता का आचरण और योग्यता इतनी नहीं होती कि वे अपनी संतान को उचित शिक्षा प्रदान कर सकें। इसके अतिरिक्त मोह और लाड़ के कारण माता–पिता बच्चों को उचित अनुशासन में नहीं रख पाते। अतः आचार्य द्वारा शिक्षा दिलवानी आवश्यक है।

प्र.68. यदि गुरुकुल में न भेजकर घर में रहकर ही शिक्षा प्रदान करवाई जाए, तो क्या हानि है?

उ. गुरुकुल का वातावरण अनुशासित और नियमित होता है। वहाँ माता–पिता से दूरकर रहकर बच्चा उसी वातावरण में तप व त्यागपूर्वक विद्यार्जन कर सकता है। धनी–निर्धन सभी परिवारों के बच्चे ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर समानता का व्यवहार करते हुए ही योग्यता प्राप्त करते हैं। बाहर के वातावरण से दूर रहने के कारण वे संसार के आकर्षणों और बुराइयों से अप्रभावित रहकर गुणों का अर्जन कर सकते हैं।

इसके विपरीत, घरेलू वातावरण में बच्चा तप व त्याग से दूर रहता हुआ पूर्णतः अनुशासित और नियमित नहीं रह पाता। वह विद्यार्जन की अपेक्षा संसार के दूसरे आकर्षणों में उलझ जाता है। उसके आचरण एवं विचारों पर बाहरी वातावरण का प्रभाव अधिक पड़ता है। किसी तरह वह किताबी शिक्षा प्राप्त कर भी ले, परन्तु उसका आचरण और आदतें शुद्ध नहीं रहते। जो माता-पिता बचपन में अपनी सन्तान को अच्छे संस्कार देते भी हैं, वे भी बाहरी वातावरण के प्रभाव से दब जाते हैं और वह बच्चा संसार के बहाव में बहकर जीवन का वास्तविक उद्देश्य भूल जाता है। आज के बच्चों की उद्दण्डता, अशिष्टता, दुराचरण आदि बुरी आदतें इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

प्र.69. (आजकल तो माता-पिता आदि मनोरंजन के लिए उल्टा-सीधा सिखाते रहते हैं। महर्षि इस विषय में प्रश्न उठाकर कह रहे हैं।) **क्या माता-पिता जैसी चाहें वैसी शिक्षा करें?**

उ. नहीं, जैसी चाहें वैसी शिक्षा **नहीं** करनी चाहिए। (उनके अनुसार, बुरी शिक्षा देने वाले माता, पिता और आचार्य को माता, पिता और आचार्य समझना ही नहीं चाहिए।)

प्र.70. महर्षि ने कुशिक्षा के कौन-से उदाहरण दिये हैं?

उ. सुन मेरे बेटे, बेटी और विद्यार्थी! तेरा शीघ्र विवाह करेंगे, तू इसकी डाढ़ी मूंछ पकड़ ले, इसकी जटा पकड़ के ओढ़नी फेंक दे, धौल मार, गाली दे, इसका कपड़ा छीन ले, पगड़ी व टोपी फेंक दे, खेल, कूद, हँस, रो, तुम्हारे विवाह में कुलवारी निकालेंगे इत्यादि। ये सब कुशिक्षा के उदाहरण हैं।

(जबकि आजकल के माता-पिता अपने छोटे बच्चों को इसी प्रकार की क्रियाएँ करवा कर खुश होते हैं तथा घर में आये हुए मेहमानों को दिखाने के लिए भी उकसाते हैं। इस प्रकार वे अपना एवं औरों का मनोरंजन करते हैं।)

इसके अतिरिक्त, उनके बुरे या अनुचित कार्य और चेष्टाओं को देखकर भी न डाँटते, न समझाते और न दण्ड देते हैं।

प्र.71. ऐसे माता, पिता और आचार्य को महर्षि ने क्या कहा है?

उ. उनके अनुसार ऐसे माता, पिता और आचार्य को माता, पिता और आचार्य न समझना चाहिए, किन्तु संतान और शिष्यों के **पक्के शत्रु** और **दु:खदायक** मानना चाहिए।

प्र.72. ऐसे माता, पिता, आचार्य को शत्रु और दु:खदायक क्यों कहा है?

उ. क्योंकि इस प्रकार के माता-पिता और आचार्य बच्चों में बुरी आदतें डालने में सहायक बनते हैं। यदि बुरा या गलत कर्म करने पर भी बच्चों को डाँटा या दण्डित नहीं किया जाएगा, तो बच्चे अच्छे-बुरे कार्य में अन्तर ही नहीं समझ पायेंगे। परिणामत: उन्हें गलत कार्य करने की आदत पड़ जाएगी, जिसके कारण जीवन में वे अशिष्ट और असभ्य कहलायेंगे तथा दु:खी होंगे। विवाह आदि के विचार देने से उनके अन्दर उसके प्रति आकर्षण पैदा होगा और वे पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगा पायेंगे।

प्र.73. महर्षि के अनुसार कैसे माता, पिता और आचार्य असल में माता-पिता कहलवाने और धन्यवाद के पात्र नहीं हो सकते?

उ. महर्षि के अनुसार, निम्नलिखित माता-पिता, आचार्य असल में माता, पिता और आचार्य कहाकर धन्यवाद के पात्र

कभी नहीं हो सकते :-

(1) जो बच्चों को अपने सामने जो चाहे बोलने, निर्लज्जता के कार्य करने, व्यर्थ चेष्टा आदि बुरे कर्मों से हटाकर विद्या की प्राप्ति आदि शुभ गुणों को अपनाने के लिए नहीं समझाते; तथा

(2) अपना तन, मन तथा धन लगाकर उन्हें उत्तम विद्या-प्राप्ति और उत्तम व्यवहार का आचरण करवा कर अपने सन्तानों का हित नहीं करते।

प्र.74. असली माता, पिता और आचार्य कौन कहलाते हैं?

उ. निम्नलिखित गुणों से युक्त ही असली माता, पिता और आचार्य कहलाने के योग्य हैं :-

(1) जो अपनी सन्तानों और शिष्यों को ईश्वर की उपासना, धर्म, अधर्म, प्रमाण, प्रमेय, सत्य, असत्य (मिथ्या), पाखण्ड, वेद, शास्त्र आदि के लक्षण और उनके स्वरूप का ठीक-ठीक ज्ञान प्रदान करते हैं;

(2) उनकी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार वेद-शास्त्रों के वचन स्मरण करवा देते हैं; तथा

(3) विद्या पढ़ने और आचार्य के अनुकूल रहने व व्यवहार करने की रीति सिखा देते हैं, जिससे वे बिना किसी बाधा के विद्याप्राप्ति कर सकें।

विद्या-प्राप्ति के उपाय

प्र.75. विद्या किस-किस प्रकार से प्राप्त होती है?

अथवा

विद्या-प्राप्ति के उपाय कौन-कौन से हैं?

उ. विद्या चार प्रकार से प्राप्त होती है-(1) **आगम काल,** (2) **स्वाध्याय काल**, (3) **प्रवचन काल**, और

(4) **व्यवहार काल**।

उसके अतिरिक्त, दूसरे चार प्रकार से भी (जिन्हें चार कर्म कहते हैं) विद्या की प्राप्ति होती है–(1) **श्रवण**, (2) **मनन**, (3) **निदिध्यासन**, और (4) **साक्षात्कार**।

प्र.76. पहले वाले चार प्रकार के कालों का अभिप्राय समझायें।

उ. (1) **आगम काल**–जिसमें मनुष्य पढ़ाने वाले से सावधान होकर, ध्यान दे के विद्या आदि पदार्थ (का ज्ञान) ग्रहण करता है, उसे **आगम काल** कहते हैं। अर्थात् जब अध्यापक या आचार्य पढ़ाते हैं, तो उस समय ध्यान पूर्वक सुनकर उसके तात्पर्य को समझना।

(2) **स्वाध्याय काल**–पठन के समय आचार्य के मुख से जो शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध की बातें प्रकाशित हों, उनको एकान्त में स्वस्थचित्त होकर पूर्वापर विचार के ठीक-ठीक हृदय में दृढ़ कर सके। अर्थात् पढ़ने के समय आचार्य से जो-जो सुना, उन-उन शब्दों के अर्थ व उनके सम्बन्धों को समझना और एकान्त में बैठकर शान्त मन से उन सब बातों एवं तथ्यों का आपस में सम्बन्ध जोड़कर हृदय में बिठा लेना। यदि कहीं कोई शंका हो, तो आचार्य से उसका समाधान कर लेना ही **स्वाध्याय काल** कहलाता है।

(3) **प्रवचन काल**–जिससे दूसरे को प्रीति से विद्याओं को पढ़ा सकना। अर्थात् उपरिलिखित दोनों कालों के पश्चात् जब सब तथ्य व बातें अच्छी तरह समझ ली जायें, तो दूसरों को भी प्रेम व धैर्यपूर्वक पढ़ाना। यही **प्रवचन काल** कहलाता है।

(4) **व्यवहार काल**–जब अपने आत्मा में सत्यविद्या होती है, तब यह करना, यह न करना, वही ठीक-ठीक

सिद्ध होके, वैसा ही आचरण करना हो सके। अर्थात् जब उपरिलिखित तीन प्रकार से ज्ञान को निश्चित रूप से प्राप्त कर लिया जाता है, तब क्या आचरण में लाना चाहिए और क्या नहीं, ऐसा विचार करके वैसा ही अपने व्यवहार में लाना **व्यवहार काल** कहाता है।

प्र.77. दूसरे चार प्रकार के कर्मों का क्या अर्थ है?

उ. दूसरे चार प्रकार के कर्मों का अर्थ निम्नलिखित है :–

(1) **श्रवण**–आत्मा मन के और मन श्रोत्र इन्द्रिय के साथ यथावत् युक्त करके अध्यापक के मुख से जो-जो अर्थ और सम्बन्ध के प्रकाश करने हारे शब्द निकलें, उनको श्रोत्र से मन और मन से आत्मा में एकत्र करते जाना।[1] अर्थात् अध्यापक पढ़ाते समय जिन-जिन शब्दों और वाक्यों का प्रयोग करता है, उनके अर्थ और सम्बन्धों को समझते हुए आत्मा को मन से, मन को श्रोत्र इन्द्रिय से, और श्रोत्र को शब्दों के साथ संयुक्त करके सुनना और उस सुने हुए को विपरीत क्रम से (अर्थात् शब्द को कान के साथ, कान को मन के साथ और मन को आत्मा के साथ जोड़ देना) अन्दर आत्मा में ही ग्रहण कर लेना।

---

1. सुनने की प्रक्रिया तभी पूर्ण हो पाती है जब आत्मा मन के साथ, मन कान के साथ और कान शब्द के साथ जुड़े हों। यदि कान शब्द को न सुनें, या सुने गये शब्दों के साथ मन न जुड़ा हो, या मन के साथ आत्मा न जुड़ी हो, तो सुनने की क्रिया पूरी नहीं हो सकती। सुना हुआ ऊपर-ऊपर से ही निकल जाता है। अतः ध्यानपूर्वक सुनने के लिए कहा जाता है। इस सुने हुए को अन्दर ग्रहण करने के लिए उल्टे क्रम से आत्मा में स्थापित करना आवश्यक है, नहीं तो सुना हुआ भी व्यर्थ हो जाएगा।

(यह प्रक्रिया **आगम काल** के समान है।)

(2) **मनन**—जो-जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध आत्मा में एकत्र हुए हैं, उनका एकान्त में स्वस्थचित्त होकर विचार करना कि कौन-सा शब्द किस अर्थ के साथ और कौन-सा अर्थ किस शब्द के साथ सम्बन्ध अर्थात् मेल रखता है और इनके मेल में किस प्रयोजन की सिद्धि और उलटे होने में क्या-क्या हानि होती है? इत्यादि।

(यह **स्वाध्याय काल** का ही दूसरा नाम है।)

(3) **निदिध्यासन**—जो-जो अर्थ और सम्बन्ध सुने और विचारे हैं, वे ठीक-ठीक हैं वा नहीं? इस बात की विशेष परीक्षा करके दृढ़ निश्चय करना। अर्थात् अध्यापक या आचार्य द्वारा सुने हुए शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध का एकन्त में विचार करने के पश्चात् यह निर्णय करना कि उसमें क्या-क्या उचित है अथवा कुछ अनुचित है? उचित को ग्रहण करने का तथा अनुचित को त्यागने का निश्चय करना, **निदिध्यासन** कहाता है।

(4) **साक्षात्कार**—जिन अर्थों के शब्द और सम्बन्ध सुने, विचारे और निश्चय किये हैं, उनको यथावत् ज्ञान और क्रिया से प्रत्यक्ष करके व्यवहारों की सिद्धि से अपना और पराया उपकार करना। अर्थात् निदिध्यासन के पश्चात् ग्रहण करने योग्य को अपने व्यवहार में भी ग्रहण करना और त्यागने योग्य को त्याग देना। इस प्रकार, अपना और दूसरों का उपकार करना ही **साक्षात्कार कर्म** कहलाता है।

(यह **व्यवहारकाल** का ही दूसरा नाम है।)

आचार्य और विद्यार्थी

प्र.78. आचार्य के साथ विद्यार्थी कैसा-कैसा बर्ताव करें?

उ. आचार्य के साथ विद्यार्थी निम्नलिखित प्रकार का व्यवहार करें:-

(1) मिथ्या (असत्य) को छोड़ के सत्य बोलें, (2) सरल रहें, (3) आज्ञा का पालन करें, (4) उनकी स्तुति करें, (5) (अध्यापक से) नीचे आसन पर बैठें, (6) शान्त रहें, (7) आचार्य की ताड़ना पर भी प्रसन्न रहें, (8) जब आचार्य कुछ पूछे तो हाथ जोड़ के नम्र होकर उत्तर देवें, (9) जब वह कुछ पढ़ाये या सलाह दे, तो ध्यान से सुनें, (10) अपने शरीर और वस्त्र शुद्ध रखें, (11) जो कुछ प्रतिज्ञा करें उसको पूरी करें, (12) जितेन्द्रिय होवें, (13) अच्छे मनुष्यों का सदा मान करें, (14) आचार्य का उपकार मान के उसके प्रति कृतज्ञ होवें, (15) पुरुषार्थी रहें, आलसी कभी न हों, (16) जिस-जिस कर्म से विद्या की प्राप्ति हो, उस-उस को करते जायें, (17) सदा उत्तम गुणों की कामना करें अर्थात् बुरे कामों पर क्रोध, विद्याग्रहण में लोभ, सज्जनों में मोह, बुरे कामों में भय, अच्छे काम न होने में शोक करें, (18) विद्यादि शुभ गुणों से आत्मा और वीर्य आदि धातुओं की रक्षा से जितेन्द्रिय हो कर शरीर का बल सदा बढ़ाते जायें। (19) जब आचार्य किसी विद्यार्थी से बातचीत करे, तब जो-जो उसके मुख से अक्षर, पद, वाक्य निकलें, उनको शान्त होकर सुनें और उसका प्रत्युत्तर दें।

प्र.79. काम, क्रोध आदि कहाँ-कहाँ करना चाहिए?

उ. काम - उत्तम गुणों में (इच्छा),
क्रोध - बुरे कामों पर,
लोभ - विद्याग्रहण में,
मोह - सज्जनों में,
शोक - अच्छे काम न होने में।

प्र.80. विद्यार्थी आचार्य के साथ कैसा व्यवहार न करें?

उ. आचार्य के साथ (1) मिथ्या न बोलें, (2) अभिमान न करें, (3) निन्दा न करें, (4) ऊँचे स्थान पर न बैठें, (5) चपलता अर्थात् शैतानी, व्यर्थ हिलना-डुलना न करें, (6) क्रोध कभी न करें, (7) जब वे कुछ पूछें, तो घमण्ड से न बोलें, (8) जब वे कुछ समझावें या सलाह देवें, तो मज़ाक में न उड़ावें, (9) शरीर और वस्त्र मैले कभी न रखें, (10) लम्पटन (फैशन आदि) और व्यभिचार कभी न करें, (11) अच्छे लोगों का अपमान कभी न करें, (12) किसी का उपकार भुलाकर उसके प्रति कृतघ्न न होवें, (13) आलसी कभी न हों, (14) जो-जो बुरे काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक आदि विद्याविरोधी बातें हैं, उन को छोड़ दें।

प्र.81. आचार्य विद्यार्थियों के साथ कैसे बर्तें?

उ. आचार्य विद्यार्थियों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करें जिससे विद्यार्थी विद्वान्, सुशील, निरभिमानी, सत्यवादी, धर्मात्मा, आस्तिक, निरालसी, उद्योगी (परिश्रमी), परोपकारी, वीर, धीर, गम्भीर, पवित्राचरण वाले, शान्त स्वभाव वाले, दमनशील, जितेन्द्रिय, ऋजु (सरल), प्रसन्नवदन होकर अपने माता, पिता, आचार्य, अतिथि, बन्धु मित्र, राजा, प्रजा आदि का प्रिय करने वाले बनें।

प्र.82. यदि कोई विद्यार्थी अनुचित आचरण करे, तो आचार्य उसके साथ कैसा व्यवहार करे?

उ. जब कोई विद्यार्थी कोई बुरी चेष्टा करें, जैसे–मलिन आचरण, मैले वस्त्र धारण करना, उठने-बैठने में विपरीत आचरण, निन्दा, ईर्ष्या, द्रोह, विवाद, लड़ाई-झगड़ा, चुगली, किसी पर मिथ्या दोष लगाना, चोरी, जारी, अनभ्यास (पढ़ाये

गये पाठ को स्मरण न करना), आलस्य, अतिनिद्रा, अतिभोजन, अतिजागरण, व्यर्थ खेलना, इधर-उधर व्यर्थ में घूमना या बातचीत करना, विषय-सेवन, बुरे व्यवहारों की कथा करना वा सुनना, दुष्टों के संग बैठना आदि अनुचित व्यवहार करे, तो उसको आचार्य अपराध के अनुसार कठिन दण्ड देवें।

प्र.83. आजकल तो दण्ड देने पर रोक लगाई जाती है।

उ. अपराध करने पर भी बिल्कुल दण्ड न देना या ताड़ना न करना विद्यार्थियों के लिए अहितकर है। इससे विद्यार्थी और अधिक उद्दण्ड और अपराधी बनते हैं। हाँ, ऐसा दण्ड नहीं देना चाहिए, जिससे उसकी शारीरिक या बौद्धिक हानि हो। महर्षि ने भी लिखा है– **'परन्तु ऐसी ताड़ना न करे कि जिससे अंग भंग वा मर्म में लगने से विद्यार्थी वा लड़के लड़की लोग व्यथा को प्राप्त हो जायें।'** अर्थात् मन में उनके सुधार और हित का भाव रखकर ही दण्ड व ताड़ना करनी चाहिए।

प्र.84.क्या दण्ड के लिए शास्त्रों का कोई प्रमाण है?

उ. हाँ, दण्ड के लिए महाभाष्य का निम्नलिखित प्रमाण है, जिसे महर्षि ने भी उद्धृत किया है :–

"सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः ॥"

(महाभाष्य 8:1:8:1)

अर्थात् आचार्य लोग अपने विद्यार्थियों को विद्या और सुशिक्षा प्रदान करने के लिए प्रेमभाव से अपने हाथों से ताड़ना करते हैं, क्योंकि सन्तान और विद्यार्थियों का जितना

लाड़न करना है, उतना ही उनके लिए बिगाड़ और जितनी ताड़ना करनी है उतना ही उनके लिए सुधार है।

विद्या का महत्त्व

दृष्टान्त : हुड़दंगा और सज्जन

प्र.85. 'पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं न पठितव्यं...कर्त्तव्यम्' यह वचन किसके द्वारा उद्धृत किया गया है?

उ. हुड़दंगे के द्वारा।

प्र.86. इसमें वह न पढ़ने के पक्ष में क्या तर्क उपस्थित कर रहा है?

उ. उसका तर्क है कि जो पढ़ता है, उसकी मृत्यु भी निश्चित है और जो नहीं पढ़ता उसकी भी। फिर पढ़ने में इतना अधिक परिश्रम करने की क्या आवश्यकता है?

प्र.87. इसके समाधान में महर्षि ने सज्जन द्वारा क्या उत्तर दिया? (अथवा **विद्या का क्या फल कहा है?)**

उ. महर्षि ने सज्जन द्वारा यह समाधान प्रस्तुत किया है कि विद्या पढ़ने का जन्म-मरण से कोई सम्बन्ध नहीं। पढ़ने से जन्म-मरण, आँख से देखना, कान से सुनना, आदि जो ईश्वरीय नियम बने हैं, वे भंग नहीं हो जाते। वे शाश्वत नियम तो उसी प्रकार अटल रहेंगे, किन्तु विद्या पढ़ने का फल तो अलग ही है। इससे मनुष्य को यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिससे वह यथायोग्य व्यवहार करने में समर्थ होता है। परिणामतः वह स्वयं और उससे दूसरे भी आनन्दयुक्त (सुखी) होते हैं।

प्र.88. क्या बिना विद्या के मनुष्य सुखी नहीं हो सकता?

aryamitra.org

उ. बिना विद्या के किसी मनुष्य को **निश्चल** (स्थायी या शाश्वत) **सुख नहीं हो सकता।** थोड़ी देर के लिए तो सुख हो सकता है, जो न होने के समान है। किसी के लिए भी यह सम्भव नहीं कि वह विद्वान् हुए बिना अर्थात् विद्या प्राप्त किये बिना ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के स्वरूप को ठीक-ठीक जानकर उसकी प्राप्ति कर सके।

प्र.89. महर्षि ने तन, मन, धन से विद्या का अभ्यास करने के लिए क्यों कहा?

उ. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के लिए ही महर्षि ने तन, मन, धन से विद्या का अभ्यास स्वयं करने और दूसरों को कराने के लिए कहा है। क्योंकि यही मानव जीवन का लक्ष्य है।

प्र.90. अब हुड़दंगा विद्या न पढ़ने के लिए और क्या तर्क उपस्थित करता है?

उ. उसका कथन है कि हम देखते हैं कि बहुत से मनुष्य विद्या पढ़ के भी दरिद्र और भीख माँगते हैं, जबकि बिना पढ़े हुए राज्य और धन का आनन्द भोगते हैं।

प्र.91. इसका समाधान सज्जन किस प्रकार करता है?

उ. सज्जन समाधान प्रस्तुत करते हुए कहता है—सुख दुःख का योग आत्मा में हुआ करता है अर्थात् सुख या दुःख की अनुभूति धन या दरिद्रता पर निर्भर नहीं करती, यह तो आत्मा पर निर्भर करती है। जहाँ विद्यारूपी सूर्य के प्रकाश का अभाव रहता है और अविद्या रूपी अन्धकार विद्यमान रहता है, वहाँ पर दुःखों की भरमार रहती है, सुख की नहीं। इसके विपरीत, जहाँ विद्या रूपी सूर्य अपने प्रकाश से

अविद्या रूपी अन्धकार को नष्ट कर देता है, उस आत्मा में सदा आनन्द या सुख की विद्यमानता रहती है, दु:ख की अनुभूति नहीं रहती। अर्थात् ज्ञान या विद्या के प्रकाश से अविद्या से उत्पन्न दु:ख का अन्धकार स्वयं नष्ट हो जाता है।

आचार्य एवं उसका आचरण

प्र.92. आचार्य विद्यार्थी को किस प्रकार से विद्या और सुशिक्षा प्रदान करे?

उ. आचार्य पूरे मन और एकाग्रता के साथ विद्यार्थी को विद्या और सुशिक्षा प्रदान करे, जिससे जो भी पढ़ाया या बताया जाए उसका अर्थ विद्यार्थी की आत्मा के भीतर निश्चित (दृढ़) रूप से बैठ जाए। इसके साथ ही उसका विद्या प्राप्ति के प्रति उत्साह भी बढ़ता जाए।

जहाँ तक सम्भव हो, आचार्य पढ़ाते समय पदार्थों का साक्षात् ज्ञान कराने के लिए विचार प्रदान करने के साथ-साथ हस्तक्रिया, यंत्र, कला कौशल आदि व्यावहारिक ज्ञान का प्रत्यक्ष भी करावे।

प्र.93. आचार्य का आचरण कैसा होना चाहिए?

उ. आचार्य कोई भी ऐसा अधर्मयुक्त कर्म या चेष्टा कभी न करे, जिसका अनुकरण करके विद्यार्थी भी अधर्मयुक्त कर्म करने लगें।

आचार्य इस बात का सदा ध्यान रखे कि मेरा आचरण और अध्यापन इस प्रकार का होना चाहिए कि जिससे संसार में विद्या और धर्माचरण की वृद्धि हो। ऐसा न हो कि मेरे द्वारा पढ़ाये गये मनुष्य अविद्वान् और कुशिक्षित बनें। इस प्रकार संसार में अविद्या की वृद्धि एवं विद्या की क्षति होने से कहीं मैं निन्दा का भागी न बन जाऊँ।

प्र.94. आचार्य को महादु:ख भोगने की सम्भावना

कब होती है?

उ. जब आचार्य के गुण, कर्म और स्वभाव परमात्मा के गुण कर्म और स्वभाव के विरुद्ध होते हैं, तो उसे महादुःख भोगने की सम्भावना होती है।

प्र.95. आचार्य को इस महादुःख से बचने के लिए क्या करना चाहिए?

उ. आचार्य को अपने गुण, कर्म और स्वभाव भी परमात्मा के गुण, धर्म और स्वभाव के अनुकूल ही बनाने चाहिए।

प्र.96. कौन-से मनुष्य परम धन्य हैं?

उ. जो मनुष्य अपने आत्मा के समान ही दूसरे मनुष्यों के लिए भी सुख में सुख और दुःख में दुःख जानते हैं और तदनुसार उनके साथ धार्मिकता का व्यवहार करते हैं, वे परम धन्य हैं।

प्र.97. आचार्य को किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए?

उ. आचार्य को सबके साथ उत्तम व्यवहार ही करना चाहिए अर्थात् उसे अपने समान ही दूसरों का भी सुख-दुःख समझकर सुख प्रदान करने वाला व्यवहार करना चाहिए।

विद्यार्थी का आचरण

प्र.98. विद्यार्थी आचार्य के प्रति किस प्रकार का व्यवहार करें?

उ. विद्यार्थी इस प्रकार के कर्मों को आचरण में लायें, जिससे आचार्य प्रसन्न हो और उसकी आत्मा सन्तुष्ट होकर विद्यार्थी को अधिक से अधिक विद्या प्रदान करने की इच्छा करे।

प्र.99. विद्यार्थी किस प्रकार अपनी विद्या को बढ़ावें?

उ. विद्यार्थी दिन-रात विद्या-प्राप्ति के विचारों में रहते हुए एक-दूसरे के साथ परस्पर प्रेम का व्यवहार करते हुए विद्या की वृद्धि करें।

प्र.100. विद्यार्थियों का आचरण कैसा होना चाहिए?

उ. (1) विद्यार्थी लोग उस स्थान पर अवश्य जायें, जहाँ विद्या, आदि का व्यवहार हो और धर्म की चर्चा हो;

(2) भोजन एवं अन्य व्यवहार इस प्रकार से करें, जिससे कभी रोग, वीर्य की हानि एवं प्रमाद (आलस्य) की वृद्धि न हो;

(3) उन्हीं पदार्थों का सेवन करें, जिनसे ज्ञान की वृद्धि हो और रोगों का नाश हो; तथा

(4) उन्हें प्रतिदिन परमेश्वर की उपासना (ध्यान), योगाभ्यास, बुद्धि की वृद्धि के उपाय, सत्य धर्म की निष्ठा और अधर्म का त्याग करने में तत्पर रहना चाहिए।

प्र.101. विद्यार्थी को किस प्रकार का आचरण नहीं करना चाहिए?

उ. (1) जहाँ पर विषयों या अधर्म की चर्चा हो, वहाँ विद्यार्थी को खड़ा भी नहीं होना चाहिए;

(2) उसे बुद्धिनाशक एवं नशीले पदार्थों का सेवन कभी नहीं करना चाहिए; तथा

(3) जो-जो भी कर्म उसकी पढ़ाई में बाधा पहुंचायें, उन सबको छोड़ देना चाहिए, जिससे वह पूर्ण विद्या प्राप्त कर सके।

सत्य-असत्य का निर्णय

प्र.102. सत्य और असत्य का निर्णय करने के लिए कौन-कौन से साधन हैं?

उ. सत्य और असत्य का निर्णय करने के लिए निम्नलिखित

पाँच साधन हैं, जिनके आधार पर परीक्षा करनी चाहिए :-

(1) ईश्वर, ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदविद्या के आधार पर परीक्षा;

(2) सृष्टिक्रम के आधार पर परीक्षा;

(3) प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों के आधार पर परीक्षा;

(4) आप्तों के आचार, आदेश (उपदेश), ग्रन्थ और सिद्धान्तों के आधार पर परीक्षा, एवं

(5) आत्मा की साक्षी के आधार पर परीक्षा।

प्र.103. ईश्वर के गुण आदि एवं वेदविद्या के आधार पर परीक्षा करके सत्य का निर्णय किस प्रकार किया जाता है?

उ. जो-जो बात और घटना ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव तथा वेदोपदेश के अनुकूल सिद्ध हों, वे-वे सत्य और धर्म तथा जो-जो प्रतिकूल या विरुद्ध हों, वे-वे असत्य और अधर्म मानना चाहिए। जैसे-यदि कोई कहे कि बिना किसी कारण और कर्ता के कोई कार्य हो जाता है, तो यह सर्वथा असत्य मानना चाहिए। इस आधार पर यह भी सिद्ध होता है कि सृष्टि भी एक कार्य है और इसका कर्त्ता भी है, जो **ईश्वर** नाम से जाना जाता है।

प्र.104. ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव कौन-कौन से हैं?

उ. ईश्वर के **गुण**-न्याय, आदि;

ईश्वर के **कर्म**-पक्षपातरहित सृष्टि निर्माण; तथा

ईश्वर का **स्वभाव**-सत्य, न्याय, दयालुता, परोपकारिता आदि।

प्र.105. ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव का ज्ञान कैसे होता है?

उ. वेद और सृष्टिक्रम से।

प्र.106. क्या ईश्वर एक पदार्थ है?

उ. हाँ, ईश्वर एक पदार्थ है, क्योंकि इसमें गुण पाये जाते हैं। यही सृष्टि की रचना भी करता है।

प्र.107. 'सृष्टिक्रम' से सत्य-असत्य का निर्णय कैसे किया जाता है?

उ. जो-जो गुण, कर्म या घटना सृष्टिक्रम अर्थात् सृष्टि के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुकूल कहे या पाये जायें, वह सत्य और जो विरुद्ध हो वह असत्य मानना चाहिए। जैसे—माता-पिता से सन्तान की उत्पत्ति, कान से सुनना, आंख से देखना आदि सृष्टि के नियम के अनुकूल हैं, अतः सत्य हैं। इसके विपरीत, बिना माता-पिता के (शरीर या कान के मैल से) लड़के की उत्पत्ति, कान से देखना, आँख से बोलना आदि असत्य हैं, क्योंकि ये सब सृष्टि नियम के विरुद्ध हैं।

प्र.108. प्रमाणों के आधार पर सत्य-असत्य का निर्णय किस प्रकार किया जाता है?

उ. प्रत्यक्ष आदि आठ प्रमाणों से जो-जो ठीक सिद्ध हो, वह-वह सत्य और जो-जो उल्टा या गलत सिद्ध हो वह-वह असत्य (मिथ्या) मानना चाहिए। यही प्रमाणों के आधार पर सत्य-असत्य का निर्णय कहलाता है।

प्र.109. यहाँ महर्षि ने कितने प्रमाण माने हैं?

उ. यहाँ महर्षि ने **आठ** प्रमाण माने हैं।

प्र.110. वे आठ प्रमाण कौन-कौन से हैं?

उ. प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव—ये आठ प्रमाण हैं।

प्र.111. 'प्रत्यक्ष प्रमाण' किसे कहते हैं?

उ. अपनी ज्ञानेन्द्रियों से किसी विषय या पदार्थ का सीधा-सीधा अनुभव करके जो ज्ञान होता है, वह **प्रत्यक्ष प्रमाण** कहलाता है। जैसे–पृथ्वी को देखकर उसे पृथ्वी ही कहना प्रत्यक्ष ज्ञान है।

प्र.112. 'अनुमान प्रमाण' क्या है?

उ. किसी एक पदार्थ या घटना (कार्य) के आधार पर दूसरे पदार्थ या उसके कारण का निश्चय करना **अनुमान** कहलाता है। जैसे–पृथ्वी (कार्य) को देखकर उसके कारण का निश्चय करना। अर्थात् यह पृथ्वी कार्य है तो इसका कोई न कोई कारण अवश्य होग। अनुमान प्रमाण प्रत्यक्ष पर आधारित होता है।

प्र.113. 'उपमान' किसे कहते हैं?

उ. किसी एक दृष्टान्त के आधार पर दूसरे का अनुमान करना, **उपमान** कहलाता है। जैसे बिना बनाने वाले के घर नहीं बन सकता, वैसे ही बिना बनाने वाले के सृष्टि नहीं बन सकती। इस आधार पर 'सृष्टि का बनाने हारा ईश्वर भी बड़ा कारीगर है, यह दृष्टान्त उपमान है।

प्र.114. 'शब्द प्रमाण' क्या है?

उ. सत्योपदेष्टाओं या आप्तों का उपदेश **शब्द** प्रमाण कहलाता है।

प्र.115. 'ऐतिह्य' किसे कहते हैं?

उ. भूतकाल में हुए पुरुषों की चेष्टा, सृष्टि आदि पदार्थों की कथा आदि (इतिहास) को **ऐतिह्य** कहते हैं।

प्र.116. 'अर्थापत्ति' क्या है?

उ. प्रसंगवश एक बात के आधार पर बिना कही या सुनी दूसरी बात को जान लेना **अर्थापत्ति** कहलाता है। जैसे–'ईश्वर निराकार है', इतना कहने मात्र से प्रसंगवश यह दूसरी बात

सिद्ध होती है कि ईश्वर शरीर धारण नहीं करता या उसकी मूर्ति नहीं हो सकती।

प्र.117. 'सम्भव प्रमाण' किसे कहते हैं?

उ. कारण से कार्य की उत्पत्ति का होना ही **सम्भव प्रमाण** माना जाता है। दूसरे शब्दों में, जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल सिद्ध हो, वही सम्भव हो सकती है, इसके विपरीत असम्भव।

प्र.118. 'अभाव प्रमाण' क्या है?

उ. किसी पदार्थ, वस्तु या गुण की अनुपस्थिति ही **अभाव प्रमाण** कहलाता है। जैसे–पिता ने पुत्र से कहा कि 'वहाँ से जल भर कर ले आओ'। इसका तात्पर्य यह हुआ कि उस स्थान पर जल का अभाव है। अतः पुत्र दूसरे स्थान से जल भर लाया।

प्र.119. 'आप्तों के आचार, उपदेश और सिद्धांत से सत्य-असत्य की परीक्षा' कैसे होती है?

उ. जो-जो बात आप्त पुरुषों के आचरण, उपदेश, ग्रन्थ और सिद्धान्त के अनुकूल सिद्ध हो, वह-वह सत्य और जो उनके विपरीत या विरुद्ध सिद्ध हो, वह-वह असत्य मानना चाहिए।

प्र.120. 'आप्त' किसे कहते हैं?

उ. जो सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, पक्षपातरहित, सब के हितैषी, विद्वान् सबके सुख के लिए प्रयत्न करें, वे धार्मिक लोग **आप्त** कहलाते हैं।

प्र.121. 'आत्मा से परीक्षा' का क्या तात्पर्य है?

उ. जो-जो अपना आत्मा अपने लिए चाहे, सो-सो सबके लिए चाहना और जो-जो न चाहे, वह किसी के लिए भी न चाहना, यही धर्म और सत्य का व्यवहार है। इसके विपरीत

व्यवहार करना अधर्म और असत्य का आचरण है। जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा क्रिया (आचरण) में होना ही सत्य कहलाता है। इसी को शुद्ध भाव से और विद्यापूर्वक जानने व जनाने की इच्छा सत्य और इसके विपरीत असत्य कहलाता है।

प्र.122. इन पांच प्रकार की परीक्षाओं का क्या महत्त्व है?

उ. किन्हीं विषयों में मतभेद होने पर, इन पांच प्रकार की परीक्षाओं के आधार पर पढ़ने और पढ़ाने वाले तथा अन्य मनुष्य सत्य अथवा असत्य तथा धर्म और अधर्म का निर्णय कर सकते हैं। तब इसके आधार पर ही सत्य और धर्म का आचरण एवं असत्य और अधर्म का परित्याग करना चाहिए।

धर्म और अधर्म (सत्य और असत्य)

प्र.123. धर्म किसे कहते हैं?

उ. जो पक्षपातरहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, पाँचों परीक्षाओं के अनुकूल आचरण, ईश्वर की आज्ञा का पालन और परोपकार करना **धर्म** कहलाता है।

प्र.124. 'अधर्म' किसे कहते हैं?

उ. धर्म से विपरीत अर्थात् पक्षपात युक्त अन्याय, असत्य का ग्रहण और सत्य का परित्याग, पाँचों परीक्षाओं के विरुद्ध आचरण, ईश्वर की आज्ञानुसार आचरण न करना तथा दूसरे का अहित करना **अधर्म** कहलाता है।

प्र.125. क्या धर्म में परस्पर विरोध हो सकता है?

उ. नहीं।

प्र.126. ऐसा क्यों?

उ. क्योंकि धर्म या सत्य एक ही होता है, उसमें परस्पर विरोध नहीं हो सकता। उसे सभी एकमत से सत्य और धर्म

ही स्वीकार करते हैं। जैसे –**'सत्य बोलने'** को सभी धर्म के रूप में ही स्वीकार करते हैं, तथा 'असत्य बोलने' को अधर्म के रूप में। यहाँ सभी एकमत हैं।

प्र.127. अधर्म में परस्पर विरुद्धाचरण क्यों होता है?

उ. अधर्म एक नहीं, अनेक होते हैं। अत: उसमें विभिन्न पक्षों में परस्पर विरोध पाया जाता है। वहाँ सभी पक्षों का कथन सत्य या धर्म नहीं हो सकता।

प्र.128. जब सत्यासत्य अथवा धर्माधर्म में निर्णय न हो सके, तो क्या करना चाहिए?

उ. तब ऊपर बताई गई पाँच प्रकार की परीक्षाओं की युक्ति से ही निर्णय करना चाहिए।

सभा में व्यवहार

प्र.129. सभा में मनुष्य को कैसा व्यवहार करना चाहिए?

उ. जब कोई मनुष्य किसी सभा में जाता है, तो उसे निम्नलिखित प्रकार से निश्चय और व्यवहार करना चाहिए :–

(1) मैं सत्य को ही जिताऊँगा और असत्य को हराऊँगा अर्थात् उसे सत्य पक्ष का समर्थन और असत्य पक्ष का विरोध करना चाहिए;

(2) वह अभिमान न करे अर्थात् स्वयं को बड़ा न माने;

(3) यदि कोई उसकी बात का खण्डन करे, तो उस पर क्रोध न करे अथवा अप्रसन्न न हो;

(4) उसे दूसरे के वचनों को ध्यान देकर सुनना चाहिए। उसमें जो सत्य हो उसको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण

करे और जो असत्य प्रतीत हो उस अंश का नम्रतापूर्वक खण्डन या विरोध अवश्य करे;

(5) इस उपरोक्त आचरण में किसी को छोटा या बड़ा नहीं मानना चाहिए;

(6) सभा में व्यर्थ बकवाद (बातें) नहीं करनी चाहिए;

(7) व्यक्ति को सभा में ऐसे ढंग से बैठना चाहिए, जिससे किसीको बुरा न लगे;

(8) सबके हित को लक्ष्य में रख कर ही बातचीत या व्यवहार करना चाहिए, जिससे सत्य की वृद्धि और असत्य का नाश हो;

(9) सदा सज्जनों का संग करे और दुष्टों से दूर रहे; और

(10) वह सभा में जो-जो प्रतिज्ञा करे, उसको सदा पूर्ण करना चाहिए।

जड़बुद्धि और तीव्रबुद्धि

प्र.130. जड़बुद्धि किसे कहते हैं?

उ. जो व्यक्ति किसी बात को स्वयं तो समझ ही न सके, परन्तु दूसरों के समझाने पर भी न समझे, वह **जड़बुद्धि** कहलाता है।

प्र.131. तीव्रबुद्धि किसे कहते हैं?

उ. जो मनुष्य किसी बात को स्वयं अथवा समझाने से झटपट समझ ले और थोड़ा समझाने से ही बहुत समझ जावे, वह **तीव्रबुद्धि** कहलाता है।

दृष्टान्त : महाजड़ और विद्वान्

प्र.132. महर्षि ने महाजड़ और विद्वान् का कौन-सा दृष्टान्त दिया है?

उ. महर्षि ने जड़बुद्धि और विद्वान् के सन्दर्भ में जो

दृष्टान्त दिया है, उसमें एक रामदास वैरागी का चेला भूपालदास **'श्रीगणेशाय नमः'** के स्थान पर **'स्त्री गनेसाय नम'** पाठ करता है। तब एक पण्डित द्वारा शुद्ध पाठ बताने पर भी नहीं मानता और कहता है कि मेरे महन्त जी ने यही पाठ बताया है। और तो और उसके गुरु इस पाठ के साथ तीन अन्य प्रकार के अशुद्ध पाठों की भी पुष्टि कर देते हैं–(1) **स्त्री गनेसाज नम**, (2) **स्त्री गनेसाप नम**, तथा (3) **स्त्री गनेसाय नम**।

प्र.133. पण्डित जी ने महन्त जी के पाठ में कौन से पाँच दोष गिनाये?

उ. पण्डितजी ने महन्त के पाठ निम्नलिखित पाँच दोष गिनाये :–

(1) **श** के स्थान पर **स** का उच्चारण;
(2) **ण** के स्थान पर **न** का उच्चारण;
(3) **शा** के स्थान पर **सा** का उच्चारण;
(4) **य** के स्थान पर **ज, प** का उच्चारण; तथा
(5) **विसर्जनीय** का उच्चारण **नहीं** करना।

प्र.134. इस दृष्टान्त से महर्षि ने क्या निष्कर्ष निकाला और क्या शिक्षा प्रदान की है?

उ. इस दृष्टान्त से महर्षि ने निष्कर्ष निकाला है कि **'सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रकथितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्'** अर्थात् शास्त्र में सब रोगों की औषधि बताई गई है, परन्तु शठ (दुष्ट) मनुष्यों की कोई औषधि नहीं बताई गई। अतः ऐसे हठी मनुष्यों से दूर ही रहना चाहिए। यदि कोई सुधरना चाहे, तो विद्वान् को चाहिए कि उसको उपदेश करके अवश्य सुधारे।

प्र.135. शास्त्रों में किसकी औषधि नहीं मिलती?

उ. मूर्ख या दुष्ट की।

माता-पिता और सन्तान

प्र.136. यदि माता, पिता, आचार्य और अतिथि स्वयं अधर्म करें और करने का उपदेश करें, तो मानना चाहिये या नहीं?

उ. कभी नहीं।

प्र.137.अधर्म का उपदेश करने वाले माता-पिता को महर्षि ने क्या संज्ञा प्रदान की है?

उ. **कुमाता** और **कुपिता**।

प्र.138. माता-पिता द्वारा अधर्म-उपदेश के कौन-से उदाहरण दिये गये हैं?

उ. महर्षि ने माता-पिता द्वारा अधर्म उपदेश के जो उदाहरण दिये हैं, वे हैं—बेटा, बिटिया! तेरा विवाह शीघ्र कर देंगे। किसी की चीज पावे तो उठा लाना, कोई एक गाली दे तो उसको तू पचास गाली दे। लड़ाई, झगड़ा, खेल, चोरी, जारी, मिथ्या भाषण (झूठ बोलना), भांग-मद्य, गांजा, चरस, अफीम (आदि नशीले पदार्थ) खाना-पीना आदि कर्म करने में कुछ दोष नहीं, क्योंकि यह अपनी कुल परम्परा है। इसमें वे प्रमाण देते हैं '**कुलधर्मः सनातनः**' अर्थात् जो धर्म कुल में पहले से चला आ रहा है, उसके करने में कुछ भी दोष नहीं है।

प्र.139. इसके उत्तर में अच्छी सन्तान (सुसन्तान) क्या उत्तर देती है (अथवा **अच्छी सन्तान को क्या उत्तर देना चाहिए)?**

उ. यदि सन्तान अच्छी अर्थात् सुसन्तान है, तो वह उपरोक्त अधर्म-उपदेश करने पर उत्तर देती है कि जो तुमने

शीघ्र विवाह करने, किसी की चीज उठाने, आदि कर्म करने का उपदेश दिया है, वे सब कार्य दुष्ट मनुष्यों के हैं, श्रेष्ठों के नहीं। इसके विपरीत, श्रेष्ठ मनुष्य तो ब्रह्मचर्य पूर्वक पूर्ण विद्या पढ़कर स्वयंवर अर्थात् पूरी युवावस्था आने पर दोनों की प्रसन्नतापूर्वक विवाह करते, किसी की करोड़ों रुपये की चीज भी जंगल में पड़ी देखकर उसे ग्रहण करने की इच्छा भी मन में नहीं करते। इसी प्रकार से अन्य बुरे आचरणों से भी दूर रहते हैं।

जो-जो तुम्हारे उत्तम कर्म और उपदेश हैं, उन-उन को तो हम ग्रहण करते हैं, दूसरों को नहीं अर्थात् अच्छे कर्मों और उपदेशों का तो पालन करेंगे, बुरों का नहीं। इस पर भी आप लोग कैसे भी क्यों न हों, तन, मन, धन से आपकी सेवा करना हमारा परम धर्म है। क्योंकि बाल्यावस्था में जैसी आपने हमारी सेवा की है, वैसे ही आपकी सेवा करना भी हमारा कर्त्तव्य है।

प्र.140. माता-पिता द्वारा अधर्म-उपदेश देने पर कुसन्तान (बुरी सन्तान) क्या उतर देती है?

उ. माता-पिता द्वारा अधर्म-उपदेश देने पर बुरी सन्तान उत्तर देती है कि हमको खूब खिलाओ, पिलाओ, खेलने दो, हमारे लिये कमाया करो। जब तुम मर जाओगे, तब तो हम ही को सब काम करना पड़ेगा। हमारा शीघ्र विवाह कर दो, नहीं तो हम इधर-उधर लीला करेंगे। बाग में (अथवा बाहर) जाके नाच-तमाशा करेंगे या वैरागी हो जायेंगे। हम पढ़ कर क्या करेंगे, क्योंकि पढ़ने में बहुत कष्ट होता है। हमारी सेवा करने के लिए ही तो तुम बने हो। अतः हमारी सैल- सपटा (घूमने-फिरने), सवारी, शिकार करने, नाच, खाने-पीने, ओढ़ने पहनने के लिए खूब धन आदि दिया करो। अन्यथा

जब हम जवान होंगे, तब तुमको देख लेंगे–'दण्डादण्डि, नखानखि, केशाकेशि, मुष्टामुष्टि, युद्धमेव भविष्यति अन्यत्किम्।' अर्थात् लड़ाई-झगड़ा एवं मार-कुटाई के सिवाय और क्या होगा।

प्र.141. दुष्ट सन्तान को उत्तम (अच्छे) माता-पिता क्या शिक्षा प्रदान करते हैं?

उ. उत्तम माता-पिता इस प्रकार की दुष्ट सन्तान को शिक्षा देते हुए कहते हैं कि अभी तुम्हारे पढ़ने, गुनने (मनन करने), सत्संग करने, अच्छी-अच्छी बातें सीखने, वीर्यनिग्रह (संयमपूर्वक ब्रह्मचर्य धारण) करने, आचार्य आदि की सेवा करने, विद्वान् बनने, शरीर को बलवान बनाने, आत्मा को उन्नत करने व पूर्ण युवावस्था प्राप्त करके अच्छे कर्म करने का समय है। **यदि इस समय चूकोगे, तो बाद में पछताओगे। बाद में तुम्हें ऐसा अवसर मिलना अति कठिन है।** क्योंकि इस समय हम घर का व तुम्हारे खान-पान आदि का प्रबन्ध करने वाले हैं अर्थात् तुम पर कोई जिम्मेदारी नहीं। अतः सुशिक्षा ग्रहण करके विद्यारूपी सर्वोत्कृष्ट धन का संचय कर लो।

प्र.142. विद्या को सर्वोत्कृष्ट (सबसे अधिक श्रेष्ठ) धन क्यों कहा है?

उ. क्योंकि विद्या का धन अक्षय अर्थात् नष्ट न होने वाला है। इसे न चोर चुरा सकता है, न इसका कोई भार होता है और जितना दान करो अर्थात् दूसरों को पढ़ाओ, उतना ही अधिक बढ़ता जाता है। इसे प्राप्त करके मनुष्य जहाँ भी रहेगा, सुखी रहेगा और प्रतिष्ठा (सम्मान) प्राप्त कर सकेगा। **विद्या से ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सम्बन्धी कर्मों को करके मनुष्य जीवन में सफल हो**

सकता है।

प्र.143. माता-पिता को परम सन्तोष कब होता है?

उ. जब माता-पिता अपनी सन्तान को **विद्यारूपी श्रेष्ठ गुणों से अलंकृत देखते हैं**, तो उन्हें परम सन्तोष की प्राप्ति होती है।

प्र.144. माता-पिता अपना अभाग्य कब समझते हैं?

उ. सन्तान को **दुष्ट कर्म करते हुए देखकर** माता-पिता अपना अभाग्य समझते हैं।

प्र.145. माता-पिता ऐसा क्यों सोचते हैं?

उ. वे सोचते हैं कि हमारे किन्हीं पाप कर्मों के फल से हमें ऐसी दुष्ट सन्तान मिली है। क्योंकि इस प्रकार की सन्तान राज्य व धन प्राप्त होने पर भी विद्या और उत्तम शिक्षा के बिना सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट कर देती है।

प्र.146. मनुष्य दरिद्र होने पर भी राज्य और ऐश्वर्य को कैसे प्राप्त कर लेता है?

उ. श्रेष्ठ विद्या और सुशिक्षा से युक्त मनुष्य दरिद्र होने पर भी राज्य और ऐश्वर्य प्राप्त कर सकता है।

प्र.147. संक्षेप में, श्रेष्ठ माता-पिता और आचार्य को सन्तानों को क्या उपदेश देना चाहिए?

उ. संक्षेप में, श्रेष्ठ माता-पिता और आचार्य को यही उपदेश देना चहिए कि जो-जो हमारा उत्तम चरित्र (अच्छे कर्म और आचरण) है, तुम उसी का आचरण करो और जो हमारे बुरे कर्म व आचरण हैं, उनको तुम कभी मत करना। इसके लिए तैत्तिरीय उपनिषद् का निम्न उदाहरण भी है-**"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।।"**

परस्पर व्यवहार

प्र.148. राजा को प्रजा के साथ किस प्रकार का वर्ताव (व्यवहार) करना चाहिए?

उ. राजा एवं राज पुरुष को प्रजा के साथ **सुमाता और सुपिता के समान** व्यवहार करना चाहिए।

प्र.149. प्रजा को राजा के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए?

उ. प्रजा राजा के साथ उसकी **सुसन्तान के समान** व्यवहार करे। इस प्रकार, दोनों में परस्पर आनन्द (सुख) की वृद्धि होती है।

प्र.150. मित्र मित्र के साथ कैसा व्यवहार करे?

उ. मित्र, मित्र के साथ **प्रीति से सत्य व्यवहार करे**, परन्तु सत्य अथवा धर्म के लिए, अधर्म के लिए नहीं। एक मित्र दूसरे मित्र के लिए वैसे ही कर्म करे जैसा अपने शरीर के लिए किया जाता है।

प्र.151. पड़ौसी के साथ कैसा व्यवहार करें?

उ. जैसा **अपने शरीर के लिए** करते हैं।

प्र.152. स्वामी सेवक के साथ किस प्रकार वर्तें?

उ. स्वामी सेवक के साथ ऐसे वर्त्ते जैसा अपने हाथ, पैर आदि **अंगों की रक्षा के लिए** वर्तते हैं।

प्र.153. सेवक स्वामी के साथ कैसा व्यवहार करें?

उ. सेवक स्वामी के साथ ऐसा व्यवहार करें **जैसे अन्न, जल, वस्त्र और घर शरीर की रक्षा के लिए** होते हैं। अर्थात् स्वामी शरीर के तुल्य है, जिसकी रक्षा के लिए सेवक की सेवाएं रूपी अन्न, जल, वस्त्र और घर का उपयोग किया जाना चाहिए।

ब्रह्मचर्य की आयु

प्र.154. ब्रह्मचर्य का क्या-क्या नियम है?

अथवा

ब्रह्मचर्य के लिए आयु की क्या अवधि है?

उ. पुरुष को कम से कम 25 वर्ष तथा अधिक से अधिक 48 वर्ष तक तथा कन्या को कम से कम 16 वर्ष तथा अधिक से अधिक 24 वर्ष तक ब्रह्मचर्य का सेवन करना चाहिए।

अर्थात् पुरुष के लिए ब्रह्मचर्य की न्यूनतम सीमा 25 वर्ष और अधिकतम सीमा 48 वर्ष, तथा कन्या के लिए न्यूनतम सीमा 16 वर्ष और अधिकतम सीमा 24 वर्ष है।

(यह ध्यान रहे कि ब्रह्मचर्य में जितेन्द्रियता के साथ-साथ विद्या का ग्रहण भी शामिल है। ब्रह्मचर्य के लिए आयु-निर्धारण की यह सीमा उन पुरुष एवं कन्याओं के लिए है, जो गृहस्थ आश्रम में जाना चाहते हैं। गृहाश्रम की इच्छा न रखने वालों के लिए तो आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत है।)

कन्याओं की शिक्षा

प्र.155. कुछ दकियानूसी (पाखण्डी और संकीर्ण विचार वाले) लोगों की शंका है कि कन्याएँ पढ़-लिखकर अपने मूर्ख पति का अपमान करेंगी और अन्य पुरुषों को पत्र भेजकर प्रीति बढ़ाकर व्यभिचार करेंगी। अतः उनका पढ़ना शास्त्रोक्त नहीं है?

उ. समझदार व्यक्ति बिल्कुल यही बात पुरुष के लिए लागू कर उत्तर दे सकता है कि पढ़ा-लिखा पुरुष भी अपनी मूर्ख स्त्री का अपमान करके इधर-उधर जाकर दूसरी स्त्रियों के साथ सैर-सपाटा किया करेगा। अतः किसी पुरुष को भी

नहीं पढ़ना चाहिए।

प्र.156. अतः पुरुष भी न पढ़े तो अच्छी बात है। क्या पढ़े-लिखे मनुष्य चतुराई से दूसरों को शीघ्र ही धोखा देकर व अपमान करके अपना मतलब नहीं सिद्ध कर लेते?

उ. बुद्धिपूर्वक सोचने से यह स्पष्ट होता है कि यह दोष पढ़ने का नहीं, अपितु कुसंगति का है। यह देखने में आता है कि जो मनुष्य धर्म पूर्वक तथा विद्या-अविद्या के विवेक से पढ़ते हैं, वे सबका उपकार करते व सबको सुख पहुँचाते हैं। इसके विपरीत, जिनका पढ़ना-पढ़ाना धर्म और ईश्वर की विद्या के विरुद्ध होता है, वे ही दूसरों को धोखा देना रूप बुरे काम करते हैं। अतः बुरे व्यवहार का कारण पढ़ना-पढ़ाना नहीं है।

प्र.157. कन्याओं के पढ़ने में वैदिक प्रमाण कौन-सा है?

उ. अथर्ववेद में इसका स्पष्ट प्रमाण है-'**ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्**' (अथर्व. 11:5:18) अर्थात् जैसे लड़के लोग ब्रह्मचर्य करते हैं, वैसे ही कन्याएँ भी ब्रह्मचर्य करके वर्णोच्चारण से लेकर वेदपर्यन्त शास्त्रों को पढ़कर, प्रसन्न होकर स्वेच्छा से पूर्ण युवावस्था वाले विद्वान् पति को वेदोक्त रीति से ग्रहण करें।

यह तो अधर्मी लोगों की ही मान्यता है, जो इस वेदोक्त प्रमाण की अवहेलना करके स्वार्थवश किसी पुरुष या स्त्री को विद्या के बिना मूर्ख रखना चाहते हैं।

विद्या-प्राप्ति का क्रम

प्र.158. विद्या को किस क्रम से पढ़ना चाहिए?

उ. विद्या प्राप्ति का क्रम-वर्णोच्चारण, व्यवहार की शुद्धि

(शुद्धि व्यवहार), पुरुषार्थ (मेहनत), धार्मिक विद्वानों का संग, शब्द, रूप-रस आदि विषयों में वृद्धि करने वाली बातचीत एवं वार्तालाप का त्याग, विचारपूर्वक व्याकरण का अध्ययन अर्थात् शब्द, उसके अर्थ और सम्बन्ध को ठीक प्रकार से जानकर तदनुसार ही कर्म करके उनको स्पष्ट या प्रत्यक्ष करना।

जिस विद्या को सीखने के लिए उनके जो-जो सहायक सत्य (आर्ष) ग्रन्थ हैं, उनको पढ़ना। तत्पश्चात् वेद एवं तदनुकूल ग्रन्थों के अर्थों को जानना। इस प्रकार अध्ययन करने से व्यक्ति शीघ्र विद्वान् हो जाता है।

प्र.159. बिना पढ़े हुए मनुष्यों की क्या गति होती है?

उ. बिना पढ़े हुए मनुष्यों की दो प्रकार की गति हो सकती है- **अच्छी और बुरी**।

प्र.160. पढ़ाई के बिना अच्छी गति कैसे सम्भव हो सकती है?

उ. जो मनुष्य पढ़ाई करने की सामर्थ्य नहीं रखते, वे **धर्माचरण करके** धार्मिक तो बन ही सकते हैं। क्योंकि विद्वानों के संग से और अपनी आत्मा की पवित्रता के अनुकूल आचरण से धर्मात्मा तो सभी बन सकते हैं। इस प्रकार उनकी गति अच्छी होगी।

धर्मात्मा और अधर्मी

प्र.161. धर्मात्मा के लक्षण को थोड़ा खोलकर बताइए।

उ. जैसा जिसके आत्मा में वैसा वाणी में, जैसा वाणी में वैसा ही क्रिया में आचरण करने वाला **धर्मात्मा** कहलाता है। ऐसा व्यक्ति जैसे अपने लिए सुख की प्राप्ति एवं दुःख का

त्याग, तथा सम्मान की इच्छा और अपमान की अनिच्छा रखता है, वैसे ही दूसरे के लिए भी करता है।

इसी प्रकार, जब किसी पर चोरी का अथवा कोई और झूठा आरोप लगाया जाता है, तो उसे बुरा लगता है। इस तरह का व्यवहार एवं आचरण धर्मात्मा किसी भी दूसरे के साथ नहीं करता।

प्र.162. धर्म की सामान्य पहचान क्या है?

उ. जिस-जिस कर्म को करने में आत्मा को शंका, लज्जा और भय नहीं होता, वह-वह **धर्म** कहलाता है।

प्र.163. अधर्मी किसे कहते हैं?

उ. आत्मा के विरुद्ध आचरण करने वाला अर्थात् आत्मा में कुछ, वाणी में कुछ (उससे भिन्न) तथा क्रिया (आचरण) में उससे भिन्न करने वाला व्यक्ति **अधर्मी** कहलाता है।

प्र.164. आत्मा के विरुद्ध आचरण करने वालों का क्या परिणाम होता है? इसमें महर्षि ने कौन-सा प्रमाण प्रस्तुत किया है?

उ. आत्मा के विरुद्ध कार्य करने वाले ही **आत्महत्यारे** और **राक्षस** कहलाते हैं। ऐसे लोग मृत्यु के पश्चात् दु:खदायी अवस्था को प्राप्त करते हैं। इसमें महर्षि ने यजुर्वेद 40:3 मन्त्र का प्रमाण दिया है:-

"असु"र्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता: ।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना:॥"

अर्थात् जो आत्मस्थ (अपने) ज्ञान के विरुद्ध कहने, मानने और करनेहारे (आत्म हत्यारे) हैं, वे ही लोग **असुर** अर्थात् राक्षस (दैत्य) नाम वाले हैं। वे बड़े अधर्मरूप अन्धकार से युक्त होकर जीते हुए और मरण को प्राप्त होकर

दु:खदायक देहादि पदार्थों को सर्वथा प्राप्त होते हैं।

प्र.165. आत्मा के अनुकूल आचरण करने वाले मनुष्यों का क्या परिणाम होता है?

उ. आत्मा के अनुकूल कहने, मानने और आचरण करने वाले मनुष्य विद्यारूप शुद्ध प्रकाश से युक्त होकर **देव** अर्थात् **विद्वान्** नाम से प्रसिद्ध होते हैं। वे जीवन में सर्वदा सुख को प्राप्त होते हैं और मृत्यु के पश्चात् भी उन्हें आनन्द युक्त (सुखदायी) देहादि पदार्थों की प्राप्ति होती है।

विद्या और अविद्या

प्र.166. विद्या किसको कहते हैं?

उ. जिससे किसी पदार्थ को यथावत् जानकर न्याययुक्त कर्म किये जायें, उसे **विद्या** कहते हैं।

प्र.167. अविद्या किसे कहते हैं?

उ. जिससे किसी पदार्थ का यथार्थ ज्ञान न होकर अन्यायपूर्वक कर्म किये जायें, उसे **अविद्या** कहते हैं।

न्याय और अन्याय

प्र.168. न्याय किसे कहते हैं?

उ. जो पक्षपात से रहित होकर सत्य का आचरण किया जाता है, उसे **न्याय** कहते हैं।

प्र.169. अन्याय किसे कहते हैं?

उ. पक्षपात सहित जो असत्य पूर्वक आचरण किया जाता है, उसे **अन्याय** कहते हैं।

धर्म और अधर्म

प्र.170. धर्म किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म न्यायपूर्वक और सबके हित के लिए किये जाते हैं, उसे **धर्म** कहते हैं।

प्र.171. अधर्म किसे कहते हैं?

उ. जो कर्म अन्याय पूर्वक और सबके अहित के लिए किये जाते हैं, उसे **अधर्म** कहते हैं।

दृष्टान्त : महामूर्ख का

प्र.172. महामूर्ख का लक्षण बताते हुए महर्षि ने कौन-सा दृष्टान्त दिया है?

उ. महामूर्ख का लक्षण बताते हुए महर्षि ने प्रियदास के चेले भगवान्दास का दृष्टान्त दिया। इसमें वह अपने गुरु से पूछता है कि मुझे संस्कृत में बोलना नहीं आता। गुरु कहते हैं—विद्या पढ़ने-पढ़ाने से नहीं, अपितु गुरु की कृपा से ही आती है। गुरु की सेवा करने से जब वे प्रसन्न होते हैं, तो ऐसी युक्ति बता देते हैं कि हृदय के कपाट खुल जाते हैं और विद्या उसी क्षण आ जाती है।

प्र.173. तब चेले के पूछने पर गुरु ने कौन-सी युक्ति बताई?

उ. गुरु ने कहा—सुन! संस्कृत बोलने की भी बहुत सरल युक्ति है। जितने भी हिन्दी या संस्कृत के शब्द हैं, उन सब पर एक-एक बिन्दु (अनुसार) लगाते जाओ, तो संस्कृत हो जाएगी। जैसे—रोंटीं, दांलं, लोंटां, जलं, आदि।

प्र.174. इसकी चेले पर क्या प्रतिक्रया हुई?

उ. इससे चेला बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—वाह-वाह! सच में गुरु के बिना क्षणमात्र में विद्या कौन सिखा सकता है? तब भगवानदास ने निम्नलिखित एक श्लोक बनाया :—

"बांपं आंजां नंमंस्कृंत्यं परं पांजं तंथैंवं चं।
मंयां भंगंवांदांसेंनं गींतां टींकां करोंम्यंहंम्।।"

प्र.175. इसका गुरु पर क्या प्रभाव पड़ा?

उ. इसे सुनकर गुरु भी बहुत खुश हो गया और बोला—चेले

हों, तो तेरे समान और गुरु हो तो मेरे समान।

प्र.176. क्या यह श्लोक सचमुच संस्कृत भाषा का शुद्ध श्लोक है?

उ. नहीं! यह सर्वथा अशुद्ध श्लोक है। सब अक्षरों या शब्दों के ऊपर इस प्रकार बिन्दु लगाने से संस्कृत भाषा नहीं बन जाती। परन्तु इस तरह बिना सोचे-विचारे काम और विश्वास करने वाले महामूर्ख अवश्य कहलाते हैं।

विद्या पढ़ाने के लाभ

प्र.177. विद्यार्थी को विद्या पढ़ते समय एवं पढ़ने के पश्चात् दूसरों को भी पढ़ाना चाहिए अथवा नहीं?

उ. विद्यार्थी को पढ़ते समय एवं पढ़ने के पश्चात् दूसरों को भी अवश्य पढ़ाना चाहिए। इसके निम्नलिखित लाभ हैं :-

(1) पढ़ने की अवधि में ही साथ-साथ पढ़ाने से विद्या में अधिक वृद्धि होती है अर्थात् वह विषय अधिक स्पष्ट होता जाता है। इस प्रकार ज्ञान अधिक बढ़ता है; (यह विद्या-प्राप्ति के साधनों के अन्तर्गत पठित **'प्रवचन काल'** से भी मेल खाता है।)

(2) पढ़ने मात्र से वह अकेला ही विद्वान् बनता है, जबकि पढ़ाने से दूसरे भी विद्वान् हो जाते हैं;

(3) पढ़ाने से क्रमशः विद्या की वृद्धि होती जाती है;

(4) जो व्यक्ति विद्या को प्राप्त कर रहा होता है, वह परोपकारी और धार्मिक भी अवश्य होता है। अतः पढ़ाने से उसकी परोपकारिता एवं धार्मिकता की भावना की पूर्ति भी हो जाती है; तथा

(5) पढ़ाने से दूसरे भी अविद्या से होने वाली हानियों

से बच जाते हैं। जैसे–अन्धा व्यक्ति तो कुँए में गिर सकता है, परन्तु दृष्टि वाला व्यक्ति नहीं। उसी प्रकार, विद्या प्राप्त करके दूसरा व्यक्ति भी पाखण्ड, अज्ञान आदि में डूबने से बच जाता है।

विद्या-विरोधी स्वार्थी

प्र.178. स्वार्थी पण्डितों का कहना है कि यदि सभी विद्या प्राप्त करके विद्वान् हो जायेंगे, तो हमको कौन पूछेगा? विशेष रूप से यदि राजा और धनी लोग भी विद्या प्राप्त कर लेंगे, तो हमारी जीविका की बहुत बड़ी हानि होगी। इसका आप क्या उत्तर देंगे?

उ. यह तो स्वार्थी पाखण्डी लोगों की विचारधारा है। क्योंकि यदि दूसरे भी पढ़-लिख कर विद्वान् बन जायेंगे, तो उनके वचनों को कोई भी नहीं सुनेगा। न कोई उनकी सेवा करेगा और न ही दक्षिणा आदि देगा। विशेष रूप से राजा और धनी लोग तो उन्हें खूब दक्षिणा देते हैं, जिससे उनकी जीविका चलती है। यदि ये लोग भी पढ़-लिख गये, तो सचमुच उनकी बहुत बड़ी हानि होगी। यह उनकी बात बिल्कुल सत्य है। इसी कारण स्वार्थवश वे नहीं चाहते कि सभी लोग विद्या प्राप्त करें।

(इसका तात्पर्य यह नहीं कि दूसरे लोग विद्या प्राप्त करके सत्य-असत्य और धर्म-अधर्म को न जानें। सभी का कर्त्तव्य है कि विद्या से सत्य ज्ञान प्राप्त कर पाखण्ड से स्वयं दूर रहें व दूसरों को भी करें।)

प्र.179. यदि कोई शूद्र उनके पास पढ़ने के लिए आता है, तो उनके प्रति इनका व्यवहार कैसा होता है?

उ. जब कोई शूद्र पढ़ने की इच्छा से इनके पास आता है, तो ये स्वार्थी लोग पहले तो उनके नाम और काम के बारे में पूछते हैं। फिर उसे निकृष्ट (नीच) बता कर कहते हैं कि तुम्हें वेद और धर्म के विषय में सुनने का अधिकार नहीं है। यदि तुम अपना धर्म छोड़कर हमारे धर्म का आचरण करोगे, तो नरक में जाओगे। हाँ, वेदों से अतिरिक्त दूसरे ग्रन्थों की कथा तो सुन सकते हो, परन्तु स्वयं नहीं पढ़ सकते। यदि स्वयं पढ़ोगे, तो अधर्मी कहलाओगे। इसके साथ ही अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए कहते हैं कि जो कुछ भेंट लाए हो, वह हमारे पास ही रख जाओ। हमारी बात मानने से ही तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी। खूब कमाओ और हमरी सेवा करो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा और ईश्वर भी प्रसन्न होगा।

प्र.180. यदि शूद्र पढ़ने के लिए हठ करे और पूछे कि पढ़ने में क्या दोष लगेगा, तो वे इसका क्या उत्तर देते हैं?

उ. तब वे कहते हैं कि तुम्हें लोगों ने बहका दिया है, जो हमारे सामने इस प्रकार बहस करते हो। यह सब कलियुग का ही प्रभाव है, जो हमारी बात नहीं मानते, सब बिगड़ गये हैं।

प्र.181. यदि वे विद्या पढ़ने के लिए और अधिक तर्क देकर कहें कि क्या पढ़ने से हमारा कल्याण नहीं होगा, तो उनकी क्या प्रतिक्रिया होती है?

उ. उनके तर्क सुनकर पुनः उनका यही उत्तर होता है कि कलियुग के कारण ही तुम हमारे सामने बड़-बड़ कर रहे हो। यदि सत्य युग होता, तो तुम इतना अधिक नहीं बोलते।

क्या हमसे शास्त्रार्थ करते हो? हमारी सेवा करो और आशीर्वाद लो। इससे ही तुम्हारा कल्याण होगा। इस प्रकार, सब तरह से वे अपना स्वार्थ ही सिद्ध करना चाहते हैं।

'पोप' का अर्थ

प्र.182. 'पोप' शब्द का क्या अर्थ है?

उ. **'पोप'** शब्द विदेशी भाषा का है, जिसका अर्थ है–'पिता' और 'बड़ा'। परन्तु प्रस्तुत प्रसंग में इसका अर्थ **'धूर्त'** है, जो धूर्तता करके अपना मतलब सिद्ध करता है।

विद्या और धर्म

प्र.183. विद्या का क्या फल है?

उ. धार्मिक होना।

प्र.184. धार्मिक होने का क्या तात्पर्य है?

उ. विद्या (ज्ञान) के प्रकाश से अच्छाई और बुराई को जानकर अच्छाई को धारण करना और बुराई को छोड़ देना।

प्र.185. जो विद्या पढ़कर धार्मिक नहीं बनता, तो उसको विद्या का फल मिलेगा या नहीं?

उ. नहीं। उसकी विद्या व्यर्थ है, क्योंकि विद्या का उद्देश्य ही धार्मिक बनना है।

प्र.186. जो विद्या से अच्छा-बुरा जानकर भी अच्छाई धारण नहीं करता और बुराई नहीं छोड़ता, उसे महर्षि दयानन्द ने क्या कहा है?

उ. चोर।

प्र.187. उसे चोर क्यों कहा?

उ. क्योंकि जैसे चोर चोरी को बुरा जानते हुए भी नहीं छोड़ता तथा साहूकारी (व्यवसाय आदि) को अच्छा जानते हुए भी नहीं अपनाता, उसी प्रकार अधर्म (बुराई) को न छोड़ने वाले और धर्म (अच्छाई) को न अपनाने वाले मनुष्य

का आचरण है।

प्र.188. जब कोई मनुष्य मन से बुरा मानते हुए भी किसी भय आदि के कारण बुराई को नहीं छोड़ता तथा अच्छाई को नहीं अपनाता, तो भी उसमें दोष है या नहीं?

उ. दोष तो है ही, क्योंकि अधर्म (बुरा) करने पर उसका ऩल दु:ख तो उसे मिलेगा ही, चाहे किसी भी कारण से हो। इसी प्रकार, धर्म (अच्छाई) न करने पर उसका ऩल सुख भी तो उसे नहीं मिल सकता।

प्र.189. इस सन्दर्भ में महर्षि ने क्या उदाहरण दिया है?

उ. जैसे–कोई मनुष्य बुरा जानते हुए भी कुँए में गिरता है, तो क्या उसे दु:ख की प्राप्ति नहीं होगी अर्थात् दु:ख प्राप्त होगा ही। इसी प्रकार, अच्छा मानते हुए भी अच्छे मार्ग पर नहीं चलता, तो उसे सुख कभी नहीं मिल सकता।

सत् और असत् पुरुष

प्र.190. सत्पुरुष का क्या लक्षण है?

उ. जो जैसा आत्मा में ज्ञान, वैसा वचन में और जैसा वचन में वैसा ही कर्म करके आचरण में लाता है, वह **सत्पुरुष** कहलाता है।

प्र.191. असत्पुरुष के क्या लक्षण है?

उ. जिसके आत्मा से मन, मन से वचन और वचन से कर्म में परस्पर विरोध होता है, वह **असत्पुरुष** कहलाता है।

पुरुषार्थ और व्यय

प्र.192. पुरुषार्थ किसे कहते हैं?

उ. उद्योग को कहते हैं।

प्र.193. इसके कितने भेद हैं?

उ. पुरुषार्थ के चार भेद हैं :–

(1) **अप्राप्त की इच्छा**–न्याय व धर्मपूर्वक अप्राप्त पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा करके उद्योग (परिश्रम) करना;

(2) **प्राप्त पदार्थ की यथावत् रक्षा करना**–परिश्रम करके जो पदार्थ प्राप्त किया है उसकी सब प्रकार से रक्षा करना, जिससे वह पदार्थ किसी प्रकार नष्ट-भ्रष्ट न हो जाए;

(3) **रक्षित पदार्थ की वृद्धि**–रक्षा किये हुए पदार्थ को धर्मयुक्त व्यवहार से और बढ़ाते जाना; एवं

(4) **पदार्थ का धर्म में खर्च करना**–बढ़े हुए पदार्थ को अच्छे व धर्मयुक्त व्यवहार एवं कार्यों में खर्च करना।

प्र.194. किस-किस व्यवहार में तन, मन व धन लगाना चाहिए?

उ. निम्नलिखित चार प्रकार के व्यवहारों में तन, मन व धन लगाना चाहिए :–

(1) **विद्या की वृद्धि;**

(2) **परोपकार;**

(3) **अनाथों का पालन;** तथा

(4) **अपने सम्बन्धियों की रक्षा**।

प्र.195. विद्या की वृद्धि में तन, मन व धन का प्रयोग किस प्रकार हो सकता है?

उ. शरीर को स्वस्थ एवं नीरोगी रखकर उससे यथायोग्य परिश्रम करके विद्या ग्रहण करना **तन से;** ग्रहण की गई विद्या का मन से अच्छी प्रकार विचार या मनन करना **मन**

से; तथा अपनी सन्तान एवं दूसरे मनुष्यों को विद्यादान करना-कराना **धन से विद्या की वृद्धि** कहलाती है।

प्र.196. परोपकार में तन, मन और धन का व्यवहार किस प्रकार किया जाता है?

उ. परोपकार के लिए अपने शरीर और मन से अत्यधिक परिश्रम करना **तन** और **मन** का व्यवहार है; तथा **धन का व्यय** करके विविध प्रकार के व्यवहार (दान, आदि करना) एवं कारखाने आदि (जैसे-फैक्ट्री, औद्योगिक व्यवसाय) खोलना, जिनमें कार्य करके अनेक मनुष्य जीविकार्जन करके अपना-अपना जीवन सुखमय बना सकते हैं।

प्र.197. 'अनाथ' किसको कहते हैं?

उ. जिनमें अपना पालन करने का भी सामर्थ्य न हो, उन्हें **अनाथ** कहते हैं। जैसे-बालक, वृद्ध, रोगी, कोई अंग भंग होने से अपंग आदि।

प्र.198. अनाथों के लिए तन, मन और धन का व्यवहार किस प्रकार हो सकता है?

उ. अनाथों को सुखी करने के लिए अपने तन, मन और धन का उपयोग करना ही उनके प्रति तन आदि का व्यवहार है। उनको सुखी करने के पश्चात् जिस-जिस में जो-जो योग्यता और सामर्थ्य हो, उस- उससे उसी प्रकार का कार्य व उपयोग भी लेना चाहिए। इस प्रकार, वे आलसी और नष्टबुद्धि (बुद्धि का उपयोग न करने वाले) नहीं होंगे।

प्र.199. 'अपने सम्बन्धियों की रक्षा' के लिए तन, मन व धन का उपयोग कैसे किया जा सकता है?

उ. अपनी सन्तान एवं अन्य सम्बन्धियों के खान-पान एवं विद्या प्राप्ति की व्यवस्था के लिए जितना सम्भव हो सके तन, मन और धन लगाना चाहिए। परन्तु यह ध्यान रखना

आवश्यक है कि कोई भी निकम्मा न रहे अर्थात् विद्या प्राप्त करने के पश्चात् सभी यथासामर्थ्य कार्य व परिश्रम करते रहें, आलसी या निकम्मे न हों।

विवाह एवं पति-पत्नी का व्यवहार

प्र.200. विवाह के पश्चात् स्त्री-पुरुष आपस में कैसा व्यवहार करें?

उ. विवाह के पश्चात् स्त्री व पुरुष आपस में निम्नलिखित प्रकार का व्यवहार करें :–

(1) स्त्री व पुरुष को कभी भी एक-दूसरे का अप्रिय आचरण नहीं करना चाहिए अर्थात् वे ऐसा व्यवहार न करें, जिससे एक-दूसरे को कष्ट हो जैसे–एक-दूसरे को अपशब्द कहना, व्यभिचार आदि करना;

(2) एक-दूसरे को देखकर प्रसन्न हों;

(3) एक-दूसरे की सेवा करें;

(4) पुरुष को चाहिए कि घर के सब कार्यों को स्त्री के आधीन कर दे अर्थात् स्त्री को सौंप दे;

(5) पुरुष भोजन, वस्त्र, आभूषण आदि की व्यवस्था करके तथा प्रिय वचन बोलकर स्त्री को सदा प्रसन्न रखे; और

(6) स्त्री को भी चाहिए कि वह पति को प्रसन्न वदन (मुख पर प्रसन्नता बनाए रखते हुए) होकर, खान-पान आदि की अच्छी व्यवस्था करके तथा प्रेमपूर्ण व्यवहार से सदा प्रसन्न रखे। इस प्रकार के व्यवहार से उत्पन्न होने वाली सन्तान उत्तम होगी, जिससे दोनों में परस्पर आनन्द बढ़ेगा।

प्र.201. यदि स्त्री-पुरुष (पति-पत्नी) परस्पर महर्षि

द्वारा उल्लिखित उपरोक्त व्यवहार न करें तो क्या हानि होगी?

उ. सर्वस्व नाश।

प्र.202. ऊपर उल्लिखित व्यवहार न किये जाने पर सर्वस्वनाश क्यों होगा?

उ. क्योंकि दोनों का परस्पर प्रीतिपूर्वक व्यवहार न होने से गृहस्थ आश्रम का कुछ भी सुख उन्हें प्राप्त नहीं हो सकता। न ही उन्हें उत्तम सन्तान, प्रतिष्ठा (सम्मान) धन आदि श्रेष्ठ पदार्थों की कभी प्राप्ति हो सकती है। अतः सर्वनाश ही समझना चाहिए।

प्र.203. किस कुल में निश्चित रूप से कल्याण स्थिर रहता है? इसमें ऋषि ने कौन-सा प्रमाण दिया है?

उ. जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री (प्रसन्न) रहती है, उसी कुल में निश्चित रूप से कल्याण स्थिर रहता है। इसमें महर्षि ने निम्नलिखित प्रमाण दिया है :-

"सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥"

(मनुङ्क अङ्क 3:60)

प्र.204. सुखपूर्ण गृहस्थ के लिए ऋषि ने किस विवाह का समर्थन किया है?

उ. स्वयंवर विवाह का।

प्र.205. सुख, विद्या और उत्तम प्रजा की हानि किस अवस्था में विवाह करने से होती है?

उ. बाल्यावस्था में।

प्र.206. गृहाश्रम में सुखलाभ किस अवस्था में

विवाह करने से होता है?

उ. पूर्ण युवावस्था में।

प्र.207. स्त्री-पुरुष परस्पर कब आनन्दित रह सकते हैं?

उ. जब ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर विद्या व शिक्षा ग्रहण करें एवं युवावस्था में एक-दूसरे की परीक्षा करके प्रसन्नता पूर्वक स्वयंवर विवाह करें।

प्र.208. बाल्यावस्था में विवाह करने से किस-किस की हानि होती है?

उ. सुख, विद्या और उत्तम प्रजा की।

प्र.209. ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर पूर्ण युवावस्था में प्रीतिपूर्वक विवाह करने से क्या प्राप्त होता है?

उ. सुखलाभ।

प्र.210. परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करके कैसी सन्तान उत्पन्न होती है?

उ. परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह करने के पश्चात् **बहुत योग्य** सन्तान उत्पन्न होती है, जैसी लाखों में एक। इस प्रकार की सन्तानों में बुद्धि, बल, पराक्रम, धर्म, सुशीलता आदि गुण भरपूर मात्रा में होते हैं। ये स्वयं महाभाग्यशाली कहाकर अपने कुल को भी प्रशंसा और यश का भागी बनाते हैं।

मनुष्यता और सत्य व्यवहार

प्र.211. मनुष्यपन (मनुष्यता) किसे कहते हैं?

उ. मनुष्य में मनुष्य जाति के अपने ही गुणों का पाया जाना, जो किसी दूसरी जाति में नहीं पाये जाते, **मनुष्यता** कहलाती है।

प्र.212. मनुष्य जाति के अपने (निज) गुण कौन-

से हैं?

उ. निर्बलों पर दया और उनका उपकार करना; निर्बलों को सताने वाले अधर्मी बलवानों से बिल्कुल भी भय और शंका न करके दूसरों को सताने से बचाना; तथा तन, मन और धन से सदा निर्बलों की रक्षा करना ही मनुष्य जाति के अपने गुण हैं।

प्र.213. मनुष्य से भिन्न जाति वाले प्राणियों का क्या स्वभाव (गुण) होता है?

उ. बलवान से डरना, निर्बल को डराना तथा उन्हें कष्ट पहुँचाकर, यहाँ तक कि प्राण लेकर (जीवन समाप्त करके) भी अपना मतलब सिद्ध करना मनुष्य से भिन्न जाति वाले प्राणियों का स्वभाव है।

प्र.214. कैसे मनुष्यों को मनुष्य से भिन्न जाति में गिनना चाहिए?

उ. जो उन जैसा स्वभाव या गुण रखते हैं। (देखिए : उपरिलिखित उत्तर)

प्र.215. कौन-से मनुष्य धन्यवाद के पात्र हैं?

उ. जो बुरे कामों को करने में भय करते और सत्य कामों को करने में बिल्कुल भी भय और शंका नहीं करते।

प्र.216. पूरी तरह सत्यता का व्यवहार किया जाए, तो व्यापार में सफलता नहीं मिल सकती, न ही मुकदमों आदि में विजय हो सकती है। अतः सब अवसरों पर सत्य कैसे बोला जा सकता है?

उ. यह बात महान् मूर्खता की है। क्योंकि यदि किसी को एक बार भी पता चल जाए कि अमुक व्यक्ति का व्यवहार झूठा है, तो उसके प्रति सम्मान और विश्वास दोनों समाप्त हो जाते हैं। इसके विपरीत, सब व्यवहारों में सत्य बोलने पर

दूसरों को उस व्यक्ति के प्रति विश्वास दृढ़ हो जाता है। इससे उसको लाभ ही लाभ होता है, हानि कभी नहीं।

प्र.217. सत्य व्यवहार के प्रति मूर्ख व्यक्ति क्या समझता है?

उ. मूर्ख व्यक्ति समझता है कि सत्य से व्यवहार का नाश और झूठ से ही व्यवहार की सिद्धि होती है।

प्र.218. इस प्रसंग में महर्षि ने कौन-सा दृष्टान्त दिया है?

उ. इस प्रसंग में महर्षि ने **लाल बुझक्कड़** का दृष्टान्त दिया है (जिसको 500 ग्राम वाले महापण्डित और गुरु मानते थे)।

दृष्टान्त : लाल बुझक्कड़

प्र.219. हाथी के पैर के चिह्नों (निशानों) को उसने किसका चिह्न बताया?

उ. हाथी के पैर के चिह्नों को उसने कहा कि ये किसी **जंगली हिरण के पैरों के** निशान हैं, जो किसी जंगली मनुष्य की चक्की के पाटों को अपने पैरों में बांध के कूदता हुआ चला गया है।

प्र.220. हाथों में बेर लेकर लड़का रोने क्यों लगा था?

उ. क्योंकि छप्पर की थूनी उसके हाथों के बीच में थी, जिससे उसका मुख बेर तक नहीं पहुँच रहा था।

प्र.221. लड़के को रोता देख उसके माँ-बाप क्यों रोने लगे थे?

उ. उन्होंने सोचा कि लड़के को खम्भे ने पकड़ लिया है।

प्र.222. फिर उसे छुड़ाने के लिए किसको बुलाया गया?

उ. लाल बुझक्कड़ को।

प्र.223. लाल बुझक्कड़ ने लड़के को छुड़ाने के लिए क्या उपाय बताया?

उ. लाल बुझक्कड़ ने निम्नलिखित दो उपाय बताये :–

(1) कुल्हाड़े से लड़के का हाथ काट डालो; या

(2) छप्पर को उठाकर नीचे रख दो और लड़के को थूनी के ऊपर से उतार ले आओ।

प्र.224. क्या लड़के को सचमुच खम्भे ने पकड़ा हुआ था?

उ. नहीं।

प्र.225. लड़के के माँ-बाप ने कौन-से उपाय को स्वीकार किया?

उ. पहले उपाय को अर्थात् कुल्हाड़े से लड़के के हाथ को काटना।

प्र.226. छप्पर उतारना क्यों स्वीकार नहीं किया?

उ. उनका कहना था कि हम दरिद्र हैं। यदि छप्पर टूट जाएगा तो, दुबारा बनाना कठिन होगा।

प्र.227. क्या लाल बुझक्कड़ ने लड़के का हाथ सचमुच काट दिया?

उ. **नहीं**। वह काटने को पूरी तरह तैयार था, परन्तु बच गया।

प्र.228. हाथ कटने से कैसे बच गया?

उ. उसी समय शोर सुनकर एक स्त्री आ गई, जो बुद्धिमती (समझदार) थी। उसने कहा कि मैं इस लड़के को छुड़ा देती हूँ।

प्र.229. उसने लड़के को कैसे छुड़ाया?

उ. खम्भे के पास जाकर उसने लड़के की अंजलि के नीचे अपनी अंजलि रखी और कहा कि बेर मेरे हाथ में छोड़ दे।

प्र.230. तब क्या हुआ?

उ. लड़के ने बेर छोड़ दिये, जो स्त्री के हाथ में आ गिरे। इस प्रकार लड़का थूनी से अलग हो गया।

प्र.231. तब लाल बुझक्कड़ पर क्या प्रतिक्रिया हुई?

उ. वह बहुत क्रुद्ध हुआ और कहा कि अब यह लड़का छः महीने के अन्दर मर जाएगा।

प्र.232. तब लोगों ने क्या कहा?

उ. लड़के के माँ-बाप तो घबरा गये, परन्तु उस समझदार स्त्री ने कहा कि यह बात झूठ है। बल्कि हाथ काटने से लड़का अभी मर सकता था, तब तुम क्या करते।

प्र.233. मृत्यु से बचने की कोई औषधि है?

उ. नहीं।

प्र.234. इस दृष्टान्त से क्या सिद्ध हुआ?

उ. झूठ का व्यवहार सदा नहीं चलता। एक बार यह सिद्ध होने पर कि अमुक व्यक्ति झूठ बोलता है, लोगों का उससे विश्वास समाप्त हो जाता है।

सत्य और धर्म

प्र.235. सत्य व्यवहार करने का क्या नाम है? (सत्य व्यवहार को क्या कहते हैं?)

उ. धर्म।

प्र.236. असत्य व्यवहार करने का क्या नाम है? (असत्य व्यवहार को क्या कहते हैं?)

उ. अधर्म।

प्र.237. धर्म (सत्य व्यवहार) का क्या फल होता है?

उ. सुख की प्राप्ति।

प्र.238. अधर्म (असत्य व्यवहार) का क्या फल होता है?

उ. दु:ख की प्राप्ति।

प्र.239. सत्य का आचरण करने के लिए ऋषि ने वेदादि शास्त्रों के कितने प्रमाण दिये हैं?

उ. तीन।

प्र.240. क्रमशः वे प्रमाण और उनका अर्थ बताएँ।

उ. वे तीन प्रमाण निम्नलिखित हैं :-

(1) **इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि** (यजु. 1:5) अर्थात् मनुष्य में मनुष्यपन यही है कि सर्वथा झूठ व्यवहारों को छोड़कर सत्य व्यवहार को सदा ग्रहण करे।

(2) **"सत्यमेव जयति नानृतं सत्यं पन्था विततो देवयानः।**
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥" (मुण्ड. 3:1:6)
अर्थात् सर्वदा सत्य ही की विजय और झूठ की पराजय होती है। इसलिए जिस सत्य से चलके धार्मिक ऋषि लोग जहाँ सत्य की निधि परमात्मा है, उसको प्राप्त होके आनन्दित हुए थे और अब भी होते हैं, उसका सेवन मनुष्य लोग क्यों न करें। अर्थात् हम भी सत्यस्वरूप परमात्मा को प्राप्त करके आनन्द प्राप्त करें।

(3) **न सत्यात्परमो धर्म्मो नानृतात् पातकं परम्।** अर्थत् यह निश्चित है कि न सत्य से परे कोई

धर्म और न असत्य से परे कोई अधर्म है।

प्र.241. कौन-से मनुष्य धन्य हैं?

उ. जो सब व्यवहारों को (व्यापार को भी) सत्य ही से करते और झूठ से युक्त कोई भी कर्म नहीं करते, वे मनुष्य धन्य हैं।

प्र.242. महर्षि ने सत्य-असत्य और धर्म-अधर्मयुक्त व्यवहार के प्रसंग में कितने दृष्टान्त दिये हैं?

उ. चार।

चार दृष्टान्त : ग्राहक और दुकानदार

प्र.243. ये चारों दृष्टान्त किस-किस को लेकर दिये हैं?

उ. पहला दृष्टान्त –ग्राहक और बजाज, दोनों ही अधर्मी अर्थात् असत्यवादी।

दूसरा दृष्टान्त–ग्राहक और बजाज, दोनों धार्मिक अर्थात् सत्यवादी।

तीसरा दृष्टान्त–दुकानदार (बजाज) सच्चा और ग्राहक झूठा।

चौथा दृष्टान्त–ग्राहक सच्चा और बजाज झूठा।

प्र.244. पहले दृष्टान्त को संक्षेप में बताकर उसका परिणाम बतायें।

उ. अधर्मी (झूठा) ग्राहक झूठे बजाज से वस्त्र का मूल्य पूछता है, जिसका असली मूल्य दस आना गज था। बजाज (दुकानदार) सोलह आने गज कहता है और ग्राहक छः आने गज। बहसबाजी करते हुए बजाज 14 आने से कम करते-करते क्रमशः 12 आने, ग्यारह आने, साढ़े दस आने, सवा दस आने और अन्ततः 10 आने पर पहुँचता है। इसी प्रकार, ग्राहक भी 7 आने से बढ़ाते-बढ़ाते क्रमशः 8 आने, 9 आने,

9ऋ आने और 10 आने पर पहुँच जाता है। दोनों ही बीच में धर्म की सौगन्ध और बेटे की सौगन्ध खाकर अपनी-अपनी बात को सत्य कहते रहते हैं। बजाज कपड़ा नापते समय भी कम नापता है और फिर बहसबाजी होती हैं।

दोनों एक-दूसरे को झूठा कहते हैं। एक-दूसरे के बाप-बेटों और सात पीढ़ियों तक को भी झूठ कहते हुए लड़ाई-झगड़ा शुरु हो जाता है। यहाँ तक कि ग्राहक बजाज को जूता मार देता है और बजाज ग्राहक को कपड़ा मापने वाला गज मारता है। बार-बार एक-दूसरे को मारने के लिए दौड़ते हैं। बहुत मुश्किल से आस-पास वाले दुकानदार छुड़ाते हैं। इस प्रकार, दोनों की दुर्दशा होती हैं। यह झूठे और अधार्मिक व्यवहार का ही परिणाम है—समय की बर्बादी, अपशब्द, गाली-गलौच और मार-पीट।

प्र.245. दोनों धार्मिक एवं सच्चे ग्राहक और बजाज का दृष्टान्त कैसा है?

उ. इस दृष्टान्त में ग्राहक बजाज से दुशाले का मूल्य पूछता है, जो पाँच सौ रुपये बताता है। ग्राहक प्रेमपूर्वक पैसे देकर दुशाला लेकर चला जाता है। इस प्रकार, शान्ति से बिना समय की बर्बादी के व्यापार हो जाता है।

प्र.246. सच्चे दुकानदार और झूठे ग्राहक का दृष्टान्त बताओ।

उ. ग्राहक दुकानदार से दुशाले का मूल्य पूछता है, जो अढ़ाई सौ रुपए बताता है। ग्राहक के दो सौ रुपए कहने पर दुकानदार कहता है कि यहाँ झूठा व्यवहार नहीं चलता। लेना हो तो लो, नहीं तो चले जाओ। ग्राहक दूसरी बहुत-सी दुकानों में घूम कर वापिस आता है और 250रु. देकर दुशाला ले जाता है। इस प्रकार, झूठे ग्राहक का ही समय बर्बाद होता

है।

प्र.247. सच्चे ग्राहक और झूठे दुकानदार का दृष्टान्त कौन-सा है?

उ. सच्चा ग्राहक झूठे दुकानदार से पीताम्बर का मूल्य पूछता है, जो 25 रु. बताता है। ग्राहक बारह रुपए कहकर चलने लगता है। तब दुकानदार (बजाज) क्रमशः 18, 14 और 13 रुपए मूल्य बताता है। ग्राहक अपनी बात पर अड़ा रहता है। आखिर दुकानदार बारह रुपए ही में बेच देता है। इस प्रकार, यहाँ भी सच्चे ग्राहक की बात पूरी होती है।

प्र.248. इन सब दृष्टान्तों का क्या सार (शिक्षा) है?

उ. इन सबका यही सार है कि धार्मिक एवं सत्यवादियों को सदा लाभ ही होता है और झूठे लोगों के समय की बर्बादी और दुर्दशा ही होती है। अतः सब मनुष्यों को उचित है कि झूठ को पूरी तरह छोड़कर सदा सत्य ही का व्यवहार करें। इससे सभी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कर आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

धार्मिक बनने का आधार

प्र.249. मनुष्य का आत्मा सदा धर्मयुक्त कैसे हो सकता है?

उ. निम्नलिखित तीन बातों को ध्यान में रखकर मनुष्य सदा ही धर्मात्मा रह सकता है :–

(1) जब मनुष्य परमात्मा को सर्वान्तर्यामी, सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक और सब कर्मों का साक्षी मान कर बुरा काम करने से डरता है, तब वह धर्मात्मा हो जाता है। अर्थात् वह जानता है कि मेरा कोई भी कर्म ऐसा नहीं, जिसे परमात्मा जानता न हो। यदि बुरा कर्म करूँगा, तो उसका फल दुःखरूप

में वह अवश्य प्रदान करेगा। अतः वह बुरा काम न करके धर्मात्मा बना रहता है।

(2) सत्य विद्या, सुशिक्षा, सत्पुरुषों की संगति, परिश्रम (उद्योग), जितेन्द्रियता, ब्रह्मचर्य आदि शुभ गुणों को धारण करने से धर्मात्मा होता है।

(3) अपने पास धन की जितनी सामर्थ्य है, उसके अनुसार ही व्यय करने से धर्मात्मा बनता है।

प्र.250. आपने परमात्मा से डर कर बुरा काम न करने वाले को धर्मात्मा कहा है। राजा आदि भी तो दण्ड देते हैं। क्या उनसे डर कर मनुष्य धर्मात्मा नहीं हो सकता?

अथवा

राजा आदि मनुष्यों से डरने वाला और परमात्मा से न डरने वाला धर्मात्मा क्यों नहीं हो सकता?

उ. केवल राजा के दण्ड से डरने वाला धर्मात्मा नहीं हो सकता, क्योंकि राजा आदि अल्पज्ञ होते हैं। वे न तो मनुष्य के सभी बुरे कर्मों को जान सकते हैं और न ही मन आदि अन्तःकरण में होने वाले बुरे कर्मों को जानकर उनका फल दे सकते हैं। वे केवल बाहर के देखे जाने वाले अधर्मयुक्त कर्मों का ही दण्ड दे सकते हैं। एकान्त में तथा मन व अन्तःकरण से होने वाले बुरे कामों को तो केवल परमात्मा ही जान सकता है। अतः उनसे बचने के लिए परमात्मा का भय आवश्यक है।

प्र.251. मनुष्य के आत्मा और मन का द्रष्टा और नियमन करने वाला राजा कौन है?

उ. आत्मा और परमात्मा।

प्र.252. ऐसा कौन-सा स्थान या कर्म है जिसे

आत्मा और परमात्मा न देखते हों?

उ. कोई भी नहीं।

प्र.253. मनुष्य कब बाहर से भी दुष्ट कर्म करने में भय और शंका नहीं करते?

उ. एकान्त में, जहाँ राजा आदि का भय नहीं होता तथा जो परमात्मा से भी नहीं डरते, वे चोरी आदि दुष्ट कर्म करने में भय या शंका नहीं करते।

प्र.254. जो आत्मा और परमात्मा को साक्षी मान कर अनुकूल कर्म करते हैं, वे क्या कहलाते हैं?

उ. धर्मात्मा।

दृष्टान्त : विद्वान् और दो विद्यार्थी

प्र.255. 'धर्मात्मा' के लक्षण बताने वाला कौन-सा दृष्टान्त महर्षि ने दिया है?

उ. विद्वान् और दो नये विद्यार्थियों का।

प्र.256. विद्वान् ने दो नये विद्यार्थियों की धार्मिकता की परीक्षा किस प्रकार ली?

उ. विद्वान् ने दोनों विद्यार्थियों से कहा कि हम तुम्हें तब पढ़ायेंगे, जब तुम दोनों एक-एक लड़के को एकान्त में ले जाकर, जहाँ कोई भी न देख रहा हो, कान पकड़ कर, दो-चार बार उठक-बैठक करा कर एक चपेट मार कर लाओगे।

प्र.257. तब दोनों विद्यार्थियों ने क्या किया?

उ. इनमें से एक विद्यार्थी ने चारों ओर किसी को भी न देखकर झटपट विद्वान् द्वारा कहे कार्य को कर डाला। परन्तु दूसरा विद्यार्थी उस आज्ञा पालन से पहले विचार करने लगा कि लड़का मुझको देख रहा है और मैं लड़के को देख रहा हूँ, फिर यह काम कैसे कर सकता हूँ? अतः वह बिना कार्य

किये ही विद्वान् के पास लौट आया।

प्र.258. इन दोनों में से किसका आचरण उचित था?

उ. दूसरे विद्यार्थी का।

प्र.259. उसने तो विद्वान् अध्यापक की आज्ञा का पालन नहीं किया था। फिर उसका आचरण उचित कैसे था?

उ. वास्तव में, विद्वान् की आज्ञा का पालन तो इसी ने किया था। क्योंकि विद्वान् ने कहा था कि यह कार्य बिल्कुल एकान्त स्थान में करना है, जहाँ कोई भी देखता न हो। उसको ऐसा कोई स्थान नहीं मिल सका और यही सच्चाई है।

प्र.260. पण्डित ने इस दूसरे विद्यार्थी को क्या कहा?

उ. पण्डित ने इस दूसरे विद्यार्थी को कहा कि तू बुद्धिमान् और धार्मिक है, अतः तू मुझसे पढ़ सकता है।

प्र.261. पहले विद्यार्थी को, जो लड़के को पण्डित के कथनानुसार चपेट मार कर आ गया था, पण्डित ने क्या कहा?

उ. उससे कहा कि तू पढ़ने के योग्य नहीं है, यहाँ से चला जा।

विद्वान् और धार्मिक

प्र.262. क्या सब मनुष्यों का विद्वान् बनना सम्भव है?

उ. नहीं।

प्र.263. क्या सब मनुष्यों का धर्मात्मा होना सम्भव है?

उ. हाँ।

प्र.264. स्वयं धार्मिक होकर भी दूसरों को धर्म में

निश्चय कौन नहीं करा सकते?

उ. अविद्वान्।

प्र.265. स्वयं धार्मिक होकर भी दूसरों को भी धार्मिक कौन बना सकता है?

उ. विद्वान्।

प्र.266. धूर्त किसको बहका कर अधर्म में प्रवृत्त कर सकता है?

उ. अविद्वान् को।

प्र.267. धूर्त किसको बहका कर अधर्म में नहीं चला सकता?

उ. विद्वान् को।

प्र.268. अविद्वान् की तुलना महर्षि ने किसके साथ की है?

उ. अन्धे के साथ।

प्र.269. क्यों?

उ. जिस प्रकार अंधा व्यक्ति न देखने के कारण कुँए में गिर सकता है, उसी प्रकार अविद्वान् भी सत्य-असत्य या धर्म-अधर्म का पूरा ज्ञान न होने के कारण अधर्म में फँस सकता है।

प्र.270. विद्वान् किसको ठीक-ठीक जान सकता है?

उ. सत्य-असत्य को।

प्र.271. सत्य-असत्य में स्थिर कौन नहीं रहा सकता?

उ. अविद्वान्।

प्र.272. विद्वान् धार्मिक और अविद्वान् धार्मिक में क्या अन्तर है?

theryasamaj.org

उ. (1) अविद्वान् धार्मिक होकर भी दूसरों को धार्मिक नहीं बना सकता, जबकि विद्वान् धार्मिक दूसरों को भी धार्मिक बना सकता है।

(2) अविद्वान् को तो कोई भी धूर्त बहका कर अधर्म में लगा सकता है, जबकि विद्वान् को नहीं बहका सकता। जैसे आंखों से देखता हुआ मनुष्य कुँए में नहीं गिर सकता, इसी प्रकार ज्ञानी अधर्म में नहीं फँसता। इसके विपरीत, अंधा न देख पाने के कारण कुँए में गिर सकता है, इसी प्रकार अविद्वान् ज्ञान न होने के कारण अधर्म में फँस सकता है।

(3) विद्वान् सत्यासत्य को ठीक-ठीक जानकर उसमें स्थिर रह सकता है, जबकि अविद्वान् सत्यासत्य को ठीक-ठीक न जानकर उसमें स्थिर नहीं रह सकता।

दृष्टान्त : अविद्वान् राजा और भिक्षुक ब्राह्मण

प्र.273. अविद्वान् धार्मिक के सन्दर्भ में महर्षि ने कौन-सा दृष्टान्त दिया है?

उ. अविद्वान् राजा, मूर्ख भिक्षुक ब्राह्मण और दानाध्यक्ष का दृष्टान्त दिया है।

प्र.274. वह दृष्टान्त कौन-सा है?

उ. इस दृष्टान्त में मूर्ख ब्राह्मण दानाध्यक्ष के माध्यम से राजा द्वारा अपनी जीविका निर्धारित करवाता है। छः महीने के लिए साठ रुपए की जीविका मिलने पर कोषाध्यक्ष, नौकर, सिपाही और दानाध्यक्ष सबके द्वारा ठगा जाता है। उसके पास केवल बाईस रुपए शेष बचते हैं। तब दानाध्यक्ष के कहने पर गंगाजी के किनारे जप करने बैठ जाता है। मूर्ख होने के कारण दानाध्यक्ष के शब्दों को ही पकड़ लेता है और **'मैं राजा का जप करूँ, मैं राजा का---'** इसको ही मन्त्र समझकर जपने लगता है।

इसी मूर्ख ब्राह्मण की नकल करके दूसरे मूर्ख भी अपनी जीविका लगवाते हैं और पहले के समान ही ठगे जाकर क्रमशः **'तू करे सो मैं करूँ---'**, **'ऐसा निभेगा कब तक---'**, और **'जब तक निभे तब तक'** मन्त्रों का जप करने लगते हैं।

प्र.275. कैसे मनुष्य अपने मतलब के लिए अन्याय करके दूसरों को ठगते हैं?

उ. अधर्मी और स्वार्थी।

प्र.276. कैसे मनुष्य अभागे होते हैं?

उ. जो अविद्या और अधर्म के अन्धकार में गिरकर कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकते, वे मनुष्य अभागे होते हैं।

(प्र. अविद्या और अधर्म के अन्धकार में गिरे मनुष्य कैसे होते हैं?

उ. अभागे।)

प्र.277. धार्मिक विद्वान् राजा का कौन-सा दृष्टान्त महर्षि ने दिया है?

उ. धार्मिक एवं विद्वान् राजा के दानाध्यक्ष के पास एक विद्याविहीन धूर्त पहुँचा और उसने जीविका के लिए प्रार्थना की। पूछने पर उसने कहा कि मैं कुछ भी नहीं पढ़ा। बीस वर्ष खेल-कूद, भैंसें चराने, खेतों में घूमने और माता-पिता के साथ आनन्द में व्यतीत हो गए। अब घर का बोझ आ पड़ा है। बाजारों में उपदेश देता हूँ। अतः जीविका का प्रबन्ध करा दें। दानाध्यक्ष ने कहा कि कुछ नौकरी-चाकरी करके परिश्रम करो, तो जीविका करा देंगे। परन्तु वह परिश्रम करने के लिए नहीं माना। तब दानाध्यक्ष ने मना कर दिया। फिर वह राजा के पास गया। राजा ने भी वैसा ही उत्तर दिया।

इसके पश्चात्, एक योग्य विद्वान् दानाध्यक्ष के पास आता

है। उसकी योग्यता और पात्रता को जानकर उसे राजा के साथ मिलवाया। राजा ने उसकी परीक्षा लेकर जान लिया कि यह वास्तव में ही श्रेष्ठ विद्वान् है। तब उसे पाठशाला में विद्यार्थियों को पढ़ाने और धर्मोपदेश के लिए एक हजार रुपए मासिक वेतन पर रख लिया गया।

प्र.278. बेरोजगार के लिए जीविका का प्रबन्ध न करना क्या अधार्मिकता नहीं है? आप तो उसे धार्मिक राजा कह रहे हैं।

उ. किसी की योग्यता के अनुसार उसका उपयोग लेकर जीविका प्रदान करना ही असल में धार्मिकता है। जो परिश्रम से जी चुराए, उसे मु"त में जीविका प्रदान करना ही अधर्म है, क्योंकि इससे आलस्य और निकम्मेपन को बढ़ावा मिलता है। परिणामतः देश अवनति की ओर जाता है।

प्र.279. वह ब्राह्मण तो साधु बनकर बाजारों में उपदेश करता था। क्या यह उचित नहीं था कि उसे उसी प्रकार का रोजगार दिया जाता?

उ. प्रत्येक मनुष्य को उसकी योग्यता के अनुसार ही कार्य करना उचित है। तभी उसका सदुपयोग और देश की उन्नति सम्भव है। महर्षि के शब्दों में **'विद्या के बिना ब्राह्मण, परोपकार के बिना साधु और विज्ञान के बिना उपदेशक का काम कैसे कर सकता होगा?'** जब यह ब्राह्मण बिल्कुल अनपढ़ था, तो इसे पढ़े-लिखों जैसा रोजगार देना सर्वथा अनुचित था।

प्र.280. ब्राह्मण की मुख्य विशेषता क्या है?

उ. विद्या।

प्र.281. साधु की मुख्य विशेषता क्या है?

उ. परोपकार।

प्र.282. उपदेशक की प्रमुख विशेषता या गुण क्या होना चाहिए?

उ. विज्ञान या ज्ञान।

प्र.283. कैसे राजा और दानाध्यक्षादि धन्य होते हैं?

उ. जिनके हृदय में विद्या, परमात्मा और धर्मरूप सूर्य प्रकाशित होता रहता है।

प्र.284. दानाभक्ष किसे कहते हैं?

उ. जो दाता के दान का भक्षण (उपभोग) करके अपना स्वार्थ सिद्ध करता जाता है, वह **दानाभक्ष** कहलाता है।

प्र.285. दानाध्यक्ष किसे कहते हैं?

उ. जो दाता के दान को सुपात्र विद्वानों को देकर उनसे विद्या और धर्म की उन्नति कराता जाए, वह **दानाध्यक्ष** कहलाता है।

राजा और प्रजा

प्र.286. राजा किसे कहते हैं? (अच्छे राजा के लक्षण बताइए।)

उ. अच्छे राजा के लक्षण निम्नलिखित हैं :–

(1) जो विद्या, न्याय, जितेन्द्रियता, शौर्य, धैर्य आदि गुणों से युक्त होता है;

(2) अपने पुत्र के समान प्रजा का पालन करता हुआ श्रेष्ठों की यथायोग्य रक्षा और दुष्टों को दण्ड प्रदान करता है;

(3) स्वयं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करके प्रजा को भी उस योग्य बनाता है; तथा

(4) स्वयं आनन्दित रहता और सबको भी सुख प्राप्ति के साधन उपलब्ध कराता है।

प्र.287. प्रजा किसे कहते हैं?

उ. जैसे पुत्र आदि सन्तान तन, मन और धन से अपने माता-पिता आदि की सेवा करके उनको सदा प्रसन्न रखती है, वैसे ही सब लोग अनेक प्रकार के धर्मयुक्त व्यवहारों (उद्योग व व्यापारों) से विविध प्रकार के उपयोगी पदार्थों का निर्माण करते हैं तथा राजसभा को कर प्रदान करके उनको प्रसन्न रखते हैं, वह **प्रजा** कहलाती है।

प्र.288. कैसा राजा राजा कहलाने के योग्य नहीं होता?

उ. जो अपना हित और प्रजा का अहित करना चाहे।

प्र.289. कैसी प्रजा प्रजा कहलाने के योग्य नहीं होती?

उ. जो अपना हित और राजा का अहित चाहे।

प्र.290. कैसे राजा और प्रजा को एक-दूसरे का शत्रु, डाकू और चोर समझना चाहिए?

उ. जो अपना हित और दूसरे का अहित चाहें।

प्र.291. किनको वास्तव में ही राजा और प्रजा कहना चाहिए?

उ. जो राजा और प्रजा धार्मिक होकर एक-दूसरे का हित करने में ही सदा लगे रहें, उनको ही वास्तव में राजा और प्रजा कहना चाहिए, इनसे विपरीत को नहीं।

प्र.292. राजा और प्रजा के परस्पर व्यवहार को समझाने के लिए महर्षि ने कौन-सा दृष्टान्त दिया है?

उ. 'अन्धेर नगरी गवर्गण्ड राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा' नामक दृष्टान्त दिया है।

दृष्टान्त : अन्धेर नगरी गवर्गण्ड राजा

प्र.293. क्या अन्धेर नगरी का नाम सदा से ही अन्धेर नगरी था?

उ. नहीं।

प्र.294. उसका पहला नाम क्या था?

उ. प्रकाशवती।

प्र.295. प्रकाशवती नगरी के राजा का नाम क्या था?

उ. धर्मपाल।

प्र.296. प्रकाशवती नगरी की व्यवस्था का नाम क्या था?

उ. यथायोग्य करने हारी।

प्र.297. धर्मपाल कैसा राजा था?

उ. धार्मिक और विद्वान्।

प्र.298. धर्मपाल की मृत्यु के पश्चात् कौन राजा बना?

उ. उसका लड़का।

प्र.299. वह कैसा था?

उ. महा अधर्मी और मूर्ख।

प्र.300. उसने गद्दी पर बैठते ही सभा से क्या कहा?

उ. उसने सभा से कहा कि जो मेरी आज्ञा माने वह मेरे पास रहे और जो न माने वह यहाँ से निकल जाए।

प्र.301. तब सभासदों ने क्या उत्तर दिया?

उ. सभासद जो कि धार्मिक थे, उन्होंने कहा कि जैसे आपके पिता सभा की सम्मति के अनुसार व्यवहार करते थे, वैसे ही आपको भी करना चाहिए।

thearyasamaj.org

प्र.302. सभासदों की बात सुनकर वह क्या बोला?

उ. उसने कहा कि मेरे पिता का काम तो उनके साथ गया, अब मेरी जैसी इच्छा होगी वैसा करूँगा।

प्र.303. राजा का उत्तर सुनकर क्या सभासद चुप हो गये?

उ. नहीं। उन्होंने कहा कि यदि आप सभा का कहना न मानोगे, तो राज्य का अथवा आप का नाश हो जाएगा।

प्र.304. तब राजा ने क्या उत्तर दिया?

उ. राजा ने उत्तर दिया कि मेरा तो जब नाश होगा तब **प्र. 305. तब सभासदों ने क्या किया?**

उ. तब सभासदों ने आपस में विचार-विमर्श किया कि **'विनाशकाले विपरीतबुद्धिः'** अर्थात् जिसका शीघ्र नाश होना होता है, उसकी बुद्धि पहले ही उल्टी हो जाती है। ऐसा ही इस राजा के साथ हो रहा है। अतः अब यहाँ हमारा गुजारा (निर्वाह) नहीं हो पाएगा। ऐसा सोचकर वे सब चले गये।

प्र.306. तब क्या वह राजा अकेला रह गया?

उ. नहीं, महामूर्ख, धूर्त और खुशामदी लोगों की मण्डली उसके साथ जुड़ गई।

प्र.307. तब राजा ने अपना नाम क्या रखा?

उ. गवर्गण्ड।

प्र.308. नगरी का नाम क्या रखा?

उ. अन्धेर।

प्र.309. उसने अपने कार्य करने की क्या पद्धति निश्चित की?

उ. उसने निश्चित किया कि जो मेरे पिता और सभा काम

करती थी, मैं उस सबसे उल्टा ही करूँगा।

प्र.310. इन उल्टे कामों में सबसे पहले उसने कौन-से कार्य निर्धारित किये?

उ. सबसे पहले उसने दो कार्य निर्धारित किये :-

(1) जैसे मेरे पिता रात में सोते और दिन में राज्य का कार्य करते थे, हम उसके विपरीत दिन में सोयेंगे और रात को राज्य का कार्य करेंगे; तथा

(2) पिता के राज्य में सब वस्तुएँ अपने-अपने भाव पर बिकती थीं, पर मेरे राज्य में सभी वस्तुएँ एक टके सेर ही बिकेंगी, चाहे वह केसर, कस्तूरी हो या मिटी।

प्र.311. प्रत्येक वस्तु का मूल्य एक टका सेर होने से आकृष्ट होकर वहाँ दूसरे देश से कौन आ टपके?

उ. दो वैरागी गुरु-शिष्य।

प्र.312. उन दोनों का कार्य क्या था?

उ. अखाड़ों में मल्लविद्या सीखना-सिखाना।

प्र.313. उनका शरीर कैसा था?

उ. बहुत मोटा।

प्र.314. उनका भोजन कितना था?

उ. 5-5 सेर।

प्र.315. प्रत्येक वस्तु टके सेर की नीति से सबसे पहले कौन लालच में आया?

उ. चेला।

प्र.316. उसने क्या सोचा था?

उ. उसने सोचा कि उस नगरी में केवल 10 टकों से ही 10 सेर मलाई आदि बढ़िया माल खाकर खूब ताकत बटोरेंगे।

प्र.317. क्या गुरु भी आराम से मान गया?

उ. गुरु ने पहले तो कहा कि उस नगरी में कभी नहीं जाना चाहिए। क्योंकि किसी दिन खाया-पिया सब निकल जाएगा और प्राण संकट में आ सकते हैं।

प्र.318. फिर वे दोनों उस अन्धेर नगरी में कैसे आ गये?

उ. चेले के हठ से और गुरु को भी मोह होने से दोनों वहाँ आ गये।

प्र.319. उन दोनों पर संकट कैसे आ पड़ा?

उ. एक रात किसी साहूकार के नौकर से कुछ लुटेरे एक हजार रुपयों की थैली छीन कर भाग गये। शिकायत करने पर राजा के सिपाहियों ने किसी भले इन्सान को ही चोर मान कर पकड़ लिया और राजा के पास ले गये कि इसने चोरी की है। गवर्गण्ड राजा ने किसी से कुछ भी पूछताछ नहीं की और न ही उस भले आदमी की बात सुनी कि मैं अमुक साहूकार का नौकर हूँ। उसने उसे शूली पर चढ़ाने का हुक्म दे दिया।

जब शूली के लिए ले जाने लगे तो सिपाहियों ने सोचा कि शूली तो मोटी है और यह आदमी दुबला है, क्या करना चाहिए? राजा से पूछने पर उसने आदेश दिया कि इसे छोड़ दो और जो आदमी शूली के समान मोटा मिले, उसे पकड़ कर शूली पर चढ़ा दो। तब उन लोगों ने बगीचे में रहने वाले इन दोनों वैरागी गुरु-चेला को इसके योग्य माना। उनमें भी चेले को अधिक अनुकूल मानकर बोले कि महाराज का आदेश है कि तुम्हें शूली चढ़ाना है। इस प्रकार वे मुसीबत में फँस गये।

प्र.320. जब उन्होंने कोई अपराध ही नहीं किया था, तो सिपाही बिना सोचे-समझे सजा कैसे दे

सकते थे?

उ. वे सिपाही भी तो गवर्गण्ड के समान ही मूर्ख थे।

प्र.321. क्या यह आवश्यक है कि मूर्ख के साथी भी मूर्ख ही हों?

उ. हाँ, प्रायः ऐसा ही होता है।

प्र.322. किस प्रमाण (उक्ति) के आधार पर आप ऐसा कह सकते हैं?

उ. **'समानव्यसनेषु मैत्री (सख्यम्)'** अर्थात् समान स्वभाव वालों की ही आपस में मित्रता होती है।

प्र.323. इसके समर्थन में क्या उदाहरण दे सकते हैं?

उ. जैसे धर्मात्माओं की धर्मात्माओं के साथ, पण्डितों की पण्डितों, दुष्टों की दुष्टों व व्यभिचारियों की व्यभिचारियों के साथ मित्रता होती है। धर्मात्मा की अधर्मात्मा के साथ और सज्जन की दुष्टों के साथ मित्रता कभी देखने में नहीं आती।

प्र.324. तो चेला क्या आराम से शूली पर चढ़ने के लिए चल दिया?

उ. नहीं, उसने तो घबरा कर कहा कि मैंने तो कोई अपराध नहीं किया, परन्तु सिपाही कुछ नहीं माने और राजा का आदेश कहकर उसे ले गये।

प्र.325. तो क्या चेले को सचमुच शूली पर चढ़ा दिया गया था?

उ. नहीं।

प्र.326. वह कैसे बच गया?

उ. गुरु-चेला ने एक चाल चली, जिससे वह बच गया।

प्र.327. वह चाल क्या थी?

उ. जब सिपाही चेले को ले जाने लगे, तो चेले ने गुरु से कहा कि किसी प्रकार अभी बचाओ, फिर दूसरे राज्य में

चले जायेंगे। तब गुरु ने उसे एक युक्ति बताई कि शूली पर चढ़ते समय मैं तुझको हटाऊँगा कि ''मैं शूली चढ़ूँगा और तुम मुझे हटाना कि मैं शूली चढ़ूँगा। इस प्रकार शूली के लिए लड़ते-लड़ते कुछ उपाय निकल आएगा जिससे हम बच जायेंगे।''

प्र.328. क्या उनकी यह युक्ति सिपाहियों ने नहीं सुनी?

उ. उन दोनों ने यह चर्चा किसी अन्य भाषा में की, जिसे सिपाही नहीं समझ सके।

प्र.329. इस उपरोक्त युक्ति का क्या परिणाम निकला?

उ. दोनों के प्राण बच गये और राजा गवर्गण्ड मृत्यु को प्राप्त हुआ।

प्र.330. यह सब कैसे हुआ?

उ. जब वे दोनों शूली के पास पहुँचे, तो लंगोटे बाँधकर आपस में खूब लड़ने लगे कि शूली पर मैं ही चढ़ूंगा। चेला कहने लगा कि मेरा धर्म नहीं कि मेरे होते गुरु शूली पर चढ़ जाए और गुरु कहने लगा कि मेरा धर्म नहीं कि मेरे सामने चेला शूली पर चढ़ जाए। हाँ, मुझको मारकर पीछे भले ही शूली पर चढ़ जाना। अब चुप रह, समय जा रहा है। ऐसा कहकर गुरु शूली पर चढ़ने लगा। तब चेला गुरु को धक्का देकर स्वयं शूली पर चढ़ने लगा। फिर गुरु ऐसे करने लगा। उनके इस तमाशे को देखकर सिपाही पूछने लगे कि तुम शूली पर चढ़ने के लिए आपस में क्यों लड़ते हो?

तब दोनों ने कहा कि तुम यह बात मत पूछो। हमें ऐसा अवसर मिलना कठिन है। उन सिपाहियों ने गवर्गण्ड राजा को इस झगड़े वाली बात बताई। तब राजा सभा के साथ वहाँ आया और साधुओं से पूछने लगा कि तुम दोनों शूली पर

चढ़ने के लिए क्यों झगड़ा कर रहे हो? उन्होंने नाटक करते हुए कहा कि हमें शूली चढ़ने दो, समय जा रहा है। यह अवसर बड़े भाग्य से मिला है। जो शूली चढ़ेगा, वही इसका ऱल देख लेगा।

राजा के बार-बार पूछने पर और यह कहने पर कि जब तक तुम इसका ऱल नहीं बताओगे हम शूली पर नहीं चढ़ने देंगे, साधु ने कहा कि जो मनुष्य इस समय शूली पर चढ़कर प्राण त्याग देगा वह चतुर्भुज होकर विमान में बैठ के आनन्दस्वरूप स्वर्ग को प्राप्त होगा।

गवर्गण्ड मूर्ख तो था ही। यह बात सुनते ही बोला कि अब मैं तुम्हें शूली पर नहीं चढ़ने दूँगा, स्वयं शूली पर चढूँगा। ऐसा कहकर वह झटपट शूली पर चढ़ गया और उसका प्राणान्त हो गया। इस प्रकार, इस युक्ति से दोनों साधुओं के प्राण बच गये।

प्र.331. तब दोनों गुरु-चेला साधुओं ने क्या किया?

उ. चेले ने कहा कि अब यहाँ न रहकर अपने देश लौट चलते हैं, पर गुरु बोला कि अब कोई चिन्ता नहीं। क्योंकि पाप की जड़ गवर्गण्ड तो मर गया। अब धर्म का राज्य होगा, अतः यहीं रहो।

प्र.332. गवर्गण्ड की सभा कैसे लोगों से भरी थी?

उ. खुशामदी।

प्र.333. ऐसी कौन-सी घटना घटी थी, जिससे पता चलता है कि उसकी सभा में खुशामदी भरे थे?

उ. बैंगन वाली घटना से स्पष्ट होता है कि उसकी सभा में सभी खुशामदी और महामूर्ख ही भरे हुए थे।

प्र.334. वह बैंगन वाली घटना कौन-सी है?

उ. एक बार गवर्गण्ड रात को भोजन में बैंगन की सब्जी

खाकर सभा में आया तो उस सब्जी की खूब प्रशंसा करने लगा।

प्र.335. जब गवर्गण्ड बैंगन की सब्जी की बहुत प्रशंसा करने लगा, तो खुशामदियों ने क्या कहा?

उ. खुशामदी बोले कि महाराज की बुद्धि धन्य है, जो बैंगन की सब्जी की भी अच्छी तरह परीक्षा कर ली है। बैंगन अच्छा है, तभी तो परमेश्वर ने उसके ऊपर मुकुट, चारों ओर कलगी, ऊपर का रंग घनश्याम के समान काला और भीतर से मक्खन के समान स्फेद रंग वाला बनाया है।

प्र.336. बैंगन की सब्जी खाने से राजा के शरीर पर क्या प्रभाव पड़ा?

उ. बैंगन खाने से राजा को दस्त शुरु हो गये और रात्रि में लगभग 30 दस्त हो गये। वह रात भर सो न पाया।

प्र.337. क्या उसने कोई औषधि नहीं ली?

उ. गवर्गण्ड ने वैद्यों को बुलाया तो सही, पर वे भी उसी के समान बुद्धि वाले थे। उन्होंने भी ऊटपटांग औषधियाँ दीं, जिससे उसका विकार और भी बढ़ गया।

प्र.338. जब गवर्गण्ड ने बैंगन की सब्जी की बादी कहकर निन्दा करनी शुरु कर दी, तो खुशामादियों की क्या प्रतिक्रिया थी?

उ. वे खुशामदी जो ठहरे। अतः बोले कि वाह-वाह महाराज! आपने तो बैंगन के गुणों के साथ-साथ एक ही रात्रि में उसके दोष भी जान लिए। बैंगन दुष्ट है, तभी तो परमात्मा ने उसके ऊपर खूंटी और चारों ओर काँटे लगा दिये। ऊपर का रंग कोयले के समान काला और भीतर का रंग कोढ़ी की चमड़ी जैसा बनाया है।

प्र.339. खुशामदियों के मुख से बैंगन की निन्दा

सुनकर गवर्गण्ड ने क्या कहा?

उ. गवर्गण्ड ने कहा—कल रात तो तुम इसकी खूब प्रशंसा करते हुए मुकुट की उपमा दे रहे थे और आज निन्दा में खूंटी आदि की उपमा दे रहे हो। कौन-सी बात सच्ची मानी जाए?

प्र.340. तब खुशामदियों ने क्या कहा?

उ. पहले तो वे घबरा गये। फिर राजा की बुद्धि की प्रशंसा करते हुए आगे बोले कि कल शाम की बात भी आप नहीं भूले। राजा को प्रसन्न करते हुए वे कहने लगे—महाराज। हमें साले बैंगन से क्या लेना देना। हम तो आपकी प्रसन्नता में प्रसन्न और अप्रसन्नता में अप्रसन्न हैं। यदि आप रात को दिन, और दिन को रात तथा सच को झूठ और झूठ को सच कहेंगे, तो हमारे लिए वह भी ठीक है।

प्र.341. तब राजा गर्वगण्ड ने नौकरों (सेवकों) का क्या धर्म बताया?

उ. गवर्गण्ड ने कहा कि नौकरों का यही धर्म है कि वे स्वामी की किसी भी बात का प्रत्युत्तर न देकर उसकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाते हुए 'जी हाँ', 'जी हाँ' करते जायें।

प्र.342. उसके प्रत्युत्तर में खुशामदियों ने राजा का क्या धर्म बताया?

उ. खुशामदियों ने कहा कि राजा का यही धर्म है कि कभी किसी बात की चिन्ता न करे। रात दिन अपने ही सुख में मस्त रहे। नौकर-चाकरों पर सदा विश्वास करते हुए सारा काम उनके आधीन छोड़ दे। बनिये बक्काल के समान कभी हिसाब-किताब न देखे। जो कोई स्फेद को काला और काले को स्फेद करे, उसे ही ठीक समझे। जिस नौकर आदि को काम पर रखे, उसे कभी न छोड़े (निकाले), चाहे वह कितना ही अपराध क्यों न करे। यदि राजा होकर भी

काम पर ही ध्यान देकर आत्मा, मन और शरीर से श्रम करता रहा, तो क्या लाभ? और यदि हिसाब-किताब की ओर ध्यान करे, तो वह राजा नहीं, अपितु महादरिद्र के समान है।

प्र.343. खुशामदियों ने गवर्गण्ड की तुलना ईश्वर के साथ किस प्रकार की?

उ. खुशामदियों ने कहा–ईश्वर को किसने देखा है? आप तो साक्षात् परमेश्वर हैं, क्योंकि आपकी कृपा से दरिद्र धनवान और अयोग्य योग्य बन जाता है। और अकृपा (नाराजगी) से धनी शीघ्र ही निर्धन, तथा योग्य अयोग्य बन जाता है।

प्र.344. अधर्मी राजा, गवर्गण्ड के बाद किसका राज्य हुआ?

उ. गवर्गण्ड के छोटे भाई सुनीति का।

प्र.345. सुनीति ने अन्धेर नगरी का पुनः क्या नाम रखा?

उ. प्रकाशवती।

प्र.346. सुनीति ने राज्य की व्यवस्था किस प्रकार चलानी आरम्भ की?

उ. सुनीति ने राज्य की व्यवस्था पूर्ण पुरुषार्थ से एवं यथायोग्य प्रकार से चलानी आरम्भ की। उन्होंने धार्मिक विद्वानों की सम्मति से श्रेष्ठों का पालन, दुष्टों का ताड़न एवं विद्या, विज्ञान और सत्य धर्म की वृद्धि आदि उत्तम कार्य करने आरम्भ कर दिये।

प्र.347. उसने पुराने खुशामदी सभासदों के साथ कैसा व्यवहार किया?

उ. उसने खुशामदियों को बहुत कठोर दण्ड देकर कुछ को

कैद कर लिया और कुछ को नौका में बिठाकर समुद्र के बीच किसी निर्जन द्वीप के बन्दीखाने में बन्द कर दिया।

राजा और प्रजा का भाग्य

प्र. 348. किसी भी देश के प्राणियों (प्रजा) के अभाग्य का उदय कब होता है?

उ. जब गवर्गण्ड के समान स्वार्थी और अधर्मी राजा होता है, जो प्रजा का विनाश करने वाला तथा धनी और खुशामदी लोगों की सभा रखता है।

प्र.349. अधर्मी राजा के राज्य में प्रजा कैसी होती है?

उ. अभागी। इसके साथ ही अधर्मी, उपद्रवी और राजविद्रोही भी।

प्र.350. किसी भी देश के प्राणियों (प्रजा) के सौभाग्य का उदय कब होता है?

उ. जब सुनीति के समान धार्मिक, विद्वान् तथा पुत्रवत् प्रजा का पालन करने वाला राजा तथा राजसभा भी ऐसे ही विद्वान् सभासदों की होती है।

प्र.351. अधर्मी, उपद्रवी और राजविद्रोही प्रजा कैसे राजा के राज्य में होती हैं?

उ. अधर्मी राजा के राज्य में।

प्र.352. धार्मिक राजा की प्रजा कैसी होती है?

उ. धार्मिक, पुरुषार्थी और पिता के समान राजा के प्रति प्रीति रखनेवाली और मंगलकारिणी होती है।

प्र.353. अभाग्य का उदय होने पर मनुष्य कैसे काम करते हैं?

उ. अभाग्य का उदय होने पर मनुष्य की बुद्धि विपरीत हो जाती है। तब मनुष्य धर्म से विपरीत एवं आपस में द्रोह, आदि के काम करने लगते हैं। इस प्रकार दु:ख को प्राप्त होते हैं।

प्र.354. सौभाग्य का उदय होने पर मनुष्य किस प्रकार के कार्य करते हैं?

उ. सौभाग्य का उदय होने पर मनुष्य अधर्म से दूर होकर धर्मयुक्त उत्तम कार्य करते हैं। परस्पर उपकार, प्रीति, विद्या एवं सत्य का आचरण करते हैं। परिणामतः सुख को प्राप्त होते हैं।

विद्या और धार्मिक व्यवहार

प्र.355. विद्या और धार्मिक व्यवहार में किसका अधिक महत्व हैं?

उ. धार्मिक व्यवहार का।

प्र.356. विद्या की अपेक्षा धार्मिक और उत्तम व्यवहार का महत्त्व अधिक क्यों हैं?

उ. क्योंकि जो मनुष्य भले ही विद्या कम पढ़ा हो, परन्तु धर्मयुक्त उत्तम व्यवहार करना जानता है अर्थात् खाना-पीना, बोलना-सुनना, बैठना-उठना, लेन-देन आदि का यथायोग्य व्यवहार जानता व करता है, वह कभी भी दुःखी नहीं हो सकता। इसके विपरीत, जो मनुष्य भले ही पूरी विद्या पढ़ा हो लेकिन यथायोग्य उत्तम व्यवहार न करके दुष्ट व्यवहार करता है, वह कभी कहीं भी न स्वयं सुखी हो सकता है और न ही दूसरों को सुख पहुँचा सकता है। अतः उत्तम और यथायोग्य व्यवहार का महत्त्व अधिक है।

प्र.357. सबके लिए विद्या का महत्त्व क्यों है?

उ. विद्या को पढ़कर सभी यथायोग्य और उत्तम व्यवहार की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। परिणामतः सुख प्राप्त करके दुःखों से दूर रह सकते हैं। अतः विद्या का महत्त्व सबके लिए है। चाहे बेटा हो या बेटी, मित्र हो या पड़ौसी, अथवा स्वामी हो या सेवक।

परिशिष्ट-८

परिभाषाएँ

(पुस्तक में लिखी गई सभी परिभाषाओं को यहाँ महर्षि दयानन्द के अपने शब्दों में ही अकारादि क्रम से दिया जा रहा है। पुस्तक के अन्दर तो समझाने की दृष्टि से शब्दावली में परिवर्तन लाया गया है। भाव वही हैं।)

(सांकेतिक शब्द—पृ.=पृष्ठ, सं.=संख्या, प्र.=प्रश्न)

(1) **अनाथ :** अनाथ उनको कहते हैं कि जिनमें अपना पालन करने का भी सामर्थ्य न हो। जैसे कि बालक, वृद्ध, रोगी, अंग भंग आदि हैं। (पृ.-57, प्र.सं.-197)

(2) **अनुमान प्रमाण :** इसको (पृथ्वी को) देखकर इसके कारण का निश्चय करना **अनुमान** है।

(पृ.-34, प्र.सं.-112)

(3) **अभाव :** अभाव अर्थात् किसी ने किसी से कहा कि जल ले आ। उसने वहाँ जल के अभाव को जानकर तर्क से जाना कि जहाँ जल है वहाँ से लाकर देना चाहिए। यह **अभाव प्रमाण** कहाता है।

(पृ.-35, प्र.सं.-118)

(4) **अर्थापत्ति :** एक बात को सुनकर बिना सुने कहे प्रसंग से दूसरी बात को जान लेना यह **अर्थापत्ति** है।

(पृ.-34, प्र.सं.-116)

(5) **अधर्म :** जो इससे (धर्म से) विपरीत (देखिए : परिभाषा संख्या—18(अ)—अर्थात् पक्षपात युक्त अन्याय,

असत्य का ग्रहण और सत्य का परित्याग, पाँचों परीक्षाओं के विरुद्ध आचरण, ईश्वर की आज्ञानुसार आचरण न करना तथा दूसरे का अहित करना) **अधर्म** कहलाता है।

(पृ.-36, प्र.सं.-124)

(ब) जो अन्यायाचरण सबके अहित के काम करने हैं, उनको **अधर्म** जानो। (पृ.-49, प्र.सं.-171)

(6) **अधर्मी :** आत्मा के विरुद्ध आचरण करने वाला अर्थात् आत्मा में कुछ, वाणी में कुछ (उससे भिन्न) तथा क्रिया (आचरण) में उससे भिन्न करने वाला व्यक्ति **अधर्मी** कहलाता है। (पृ.-48, प्र.सं.-163)

(7) **अन्याय :** जो पक्षपात से मिथ्याचरण करना है, वह **अन्याय** कहाता है। (पृ.-49, प्र.सं.-169)

(8) **अविद्या :** जिससे पदार्थों के स्वरूप को उल्टा जानकर अपना और पराया अनुपकार लेवें, वह **अविद्या** कहलाती है। (पृ.-17, प्र.सं.-58)

जिससे किसी पदार्थ का यथावत् ज्ञान न होकर अन्यायपूर्वक कर्म किये जायें, वह **अविद्या** कहाती है। (पृ.-49, प्र.सं.-167)

(9) **असत्पुरुष :** जिसका आत्मा से मन, उससे वचन और वचन से विरुद्ध कर्म करना है, वही **असत्पुरुष** का लक्षण है। (पृ.-55, प्र.सं.-191)

(10) **आगम काल :** जिसमें मनुष्य पढ़ाने वाले से सावधान होकर, ध्यान दे के विद्या आदि पदार्थ (का ज्ञान) ग्रहण करता है, उसे **आगम काल** कहते हैं।

(पृ.-22, प्र.सं.-76)

(11) **आचार्य :** जो विद्यार्थियों को अत्यन्त प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षापूर्वक विद्या देने के लिए तन,

मन और धन से प्रयत्न करे, उसको **आचार्य** कहते हैं। (पृ.-17, प्र.सं.-61)

(जो सांगोपांग वेदविद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे, वह आचार्य कहलाता है- **स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश (31)**।)

(12) **आत्मा से परीक्षा : आत्मा से परीक्षा** उसको कहते हैं कि जो-जो अपना आत्मा अपने लिए चाहे, सो-सो सबके लिए चाहना और जो-जो न चाहे, वह किसी के लिए भी न चाहना। जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा क्रिया में होने को जानने जनाने की इच्छा, शुद्ध भाव और विद्या के नेत्र से देखकर सत्य और असत्य का निश्चय करना चाहिए। (पृ.-35, प्र.सं.-121)

(13) **आप्त** : जो सत्यवादी, सत्यकारी, सत्यमानी, पक्षपातरहित, सब के हितैषी, विद्वान् सबके सुख के लिए प्रयत्न करें, वे धार्मिक लोग **आप्त** कहलाते हैं।

(पृ.-35, प्र.सं.-120)

(14) **उपमान** : जैसे बिना बनाने हारे के घर नहीं बन सकता, वैसे ही **'सृष्टि का बनाने हारा ईश्वर भी बड़ा कारीगर है'**, यह दृष्टान्त **उपमान** है।

(पृ.-34, प्र.सं.-113)

(15) **ऐतिह्य** : भूतकालस्थ पुरुषों की चेष्टा, सृष्टि आदि पदार्थों की कथा आदि को **ऐतिह्य** कहते हैं।

(पृ.-34, प्र.सं.-115)

(16) **गुरु** : यहाँ महर्षि ने निष्कपट और परोपकारी अध्यापक को ही **गुरु** कहा है। (पृ.-16, प्र.सं.-53)

(17) **जड़बुद्धि** : जो आप तो समझ ही न सके, परन्तु दूसरों के समझाने से भी न समझे, वह **जड़बुद्धि**

कहाता है। (पृ.-38, प्र.सं.-130)

(18) **तीव्रबुद्धि :** जो समझाने से झटपट समझे और थोड़े ही समझाने बहुत समझ जावे, वह **तीव्रबुद्धि** कहाता है। (पृ.-38, प्र.सं.-131)

(19) **दानाध्यक्ष :** जो दाता के दान को सुपात्र विद्वानों को देकर उनसे विद्या और धर्म की उन्नति कराता जाए, वह **दानाध्यक्ष** कहलाता है। (पृ.-75, प्र.सं.-285)

(20) **दानाभक्ष :** जो दाता के दान का भक्षण (उपभोग) करके अपना स्वार्थ सिद्ध करता जाता है, वह **दानाभक्ष** कहलाता है। (पृ.-75, प्र.सं.-284)

(21) **धर्म :** (अ) जो पक्षपातरहित न्याय, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, पाँचों परीक्षाओं के अनुकूल आचरण, ईश्वर की आज्ञापालन परोपकार करनारूप **धर्म** है। (पृ.-36, प्र.सं.-123)

(ब) जिस-जिस कर्म को करने में आत्मा को शंका, लज्जा और भय नहीं होता, वह-वह **धर्म** कहलाता है। (पृ.-47, प्र.सं.-162)

(स) जो न्यायाचरण सबके हित का करना आदि कर्म हैं, उनको **धर्म** जानो। (पृ.-49, प्र.सं.-170)

(द) सत्य व्यवहार करने का नाम **धर्म** है।
(पृ.-64, प्र.सं.-235)

(22) **धर्मात्मा :** जो मनुष्य इस प्रकार आत्मा और परमात्मा की साक्षी से अनुकूल कर्म करते हैं, वे ही **धर्मात्मा** कहाते हैं। (पृ.-47, प्र.सं.-161)

(23) **धार्मिक :** विद्या (ज्ञान) के प्रकाश से अच्छाई और बुराई को जानकर अच्छाई को धारण करना और बुराई को छोड़ देना। (पृ.-54, प्र.सं.-184)

(24) **निदिध्यासन** : उसको कहते हैं कि जो-जो अर्थ और सम्बन्ध सुने और विचारे हैं, वे ठीक-ठीक हैं वा नहीं? इस बात की विशेष परीक्षा करके दृढ़ निश्चय करना। (पृ.-24, प्र.सं.-77)

(25) **न्याय** : जो पक्षपातरहित सत्याचरण करना है, वह **न्याय** कहाता है। (पृ.-49, प्र.सं.-168)

(26) **प्रजा** : जैसे पुत्र आदि सन्तान तन, मन और धन से अपने माता-पिता आदि की सेवा करके उनको सर्वदा प्रसन्न रखते हैं, वैसे प्रजा अनेक प्रकार के धर्मयुक्त व्यवहारों (उद्योग व व्यापारों) से पदार्थों को सिद्ध करके राजसभा को कर देकर उनको प्रसन्न रखे, वह **प्रजा** कहलाती है। (पृ.-7, प्र.सं.-287)

(27) **प्रत्यक्ष प्रमाण** : जैसे किसी ने किसी से कहा कि यह क्या है? दूसरे ने कहा कि पृथिवी। यह **प्रत्यक्ष** है। (पृ.-34, प्र.सं.-111)

(28) **प्रवचन काल** : **प्रवचन काल** उसको कहते हैं कि जिससे दूसरे को प्रीति से विद्याओं को पढ़ा सकना। (पृ.-22, प्र.सं.-76)

(29) **ब्रह्मचर्य** : ब्रह्मचर्य अर्थात् वेदादि सत्यशास्त्र और परमात्मा की उपासना का अभ्यास आदि कर्म करना।
(पृ.-14, प्र.सं.-48)

(30) **ब्रह्मचारी** : जो जितेन्द्रिय होके ब्रह्म अर्थात् वेदविद्या के लिए तथा आचार्यकुल में जाकर विद्याग्रहण के लिए प्रयत्न करे, वह **ब्रह्मचारी** कहलाता है।
(पृ.-17, प्र.सं.-60)

(31) **मनन** : **मनन** उसको कहते हैं कि जो-जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध आत्मा में एकत्र हुए हैं, उनका एकान्त

में स्वस्थचित्त होकर विचार करना कि कौन-सा शब्द किस अर्थ के साथ और कौन अर्थ किस शब्द के साथ सम्बन्ध अर्थात् मेल रखता है और इनके मेल में किस प्रयोजन की सिद्धि और उलटे होने में क्या-क्या हानि होती है? इत्यादि। (पृ.-23, प्र.सं.-77)

(32) **राजा :** जो विद्या, न्याय, जितेन्द्रियता, शौर्य, धैर्य आदि गुणों से युक्त होकर अपने पुत्र के समान प्रजा के पालन में और श्रेष्ठों की यथायोग्य रक्षा और दुष्टों को दण्ड देकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति से युक्त होकर, अपनी प्रजा को कराके, आनन्दित रहता और सबको सुख से युक्त करता है, वह **राजा** कहलाता है।

(पृ.-75, प्र.सं.-286)

(33) **विद्या :** (अ) जिससे पदार्थ का स्वरूप यथावत् जानकर उससे उपकार लेके अपने और दूसरों के लिए सुखों को सिद्ध कर सकें, वह **विद्या** है।

(पृ.-16, प्र.सं.-57)

(ब) जिससे पदार्थ यथावत् जानकर न्याययुक्त कर्म किये जावें, वह **विद्या** कहाती है। (पृ.-49, प्र.सं.-166)

(34) **व्यवहार काल : व्यवहार काल** उसको कहते हैं कि जब अपने आत्मा में सत्यविद्या होती है, तब यह करना, यह न करना, वही ठीक-ठीक सिद्ध होके, वैसा ही आचरण करना हो सके, ये चार प्रयोजन हैं।

(पृ.-23, प्र.सं.-76)

(35) **शब्द प्रमाण :** सत्योपदेष्टाओं का उपदेश **शब्द** प्रमाण कहलाता है। (पृ.-34, प्र.सं.-114)

(36) **शिक्षा :** जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्या आदि दोषों को छोड़ के सदा

आनन्दित हो सकें, वह **शिक्षा** कहाती है।
(पृ.-16, प्र.सं.-56)

(37) **शूरवीर : शूरवीर** अर्थात् दृढ़ोत्साही उद्योगी (मनुष्य)। (पृ.-15, प्र.सं.-51)

(38) **श्रवण :** आत्मा मन के और मन श्रोत्र इन्द्रिय के साथ यथावत् युक्त करके अध्यापक के मुख से जो-जो अर्थ और सम्बन्ध के प्रकाश करने हारे शब्द निकलें, उनको श्रोत्र से मन और मन से आत्मा में एकत्र करते जाना। (पृ.-23, प्र.सं.-77)

(39) **सत्पुरुष :** वही **सत्पुरुष** का लक्षण है कि जैसा आत्मा का ज्ञान वैसा वचन और जैसा वचन वैसा ही कर्म करना। (पृ.-55, प्र.सं.-190)

(40) **सम्भव प्रमाण :** कारण से कार्य होना आदि को **सम्भव प्रमाण** माना जाता है। (पृ.-35, प्र.सं.-117)

(41) **साक्षात्कार : साक्षात्कार** उसको कहते हैं कि जिन अर्थों के शब्द और सम्बन्ध सुने, विचारे और निश्चय किये हैं, उनको यथावत् ज्ञान और क्रिया से प्रत्यक्ष करके व्यवहारों की सिद्धि से अपना और पराया उपकार करना। (पृ.-24, प्र.सं.-77)

(42) **स्वाध्याय काल : स्वाध्याय काल** उसको कहते हैं कि पठन के समय आचार्य के मुख से जो शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध की बातें प्रकाशित हों, उनको एकान्त में स्वस्थचित्त होकर पूर्वापर विचार के ठीक-ठीक हृदय में दृढ़ कर सके। (पृ.-22, प्र.सं.-76)